सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

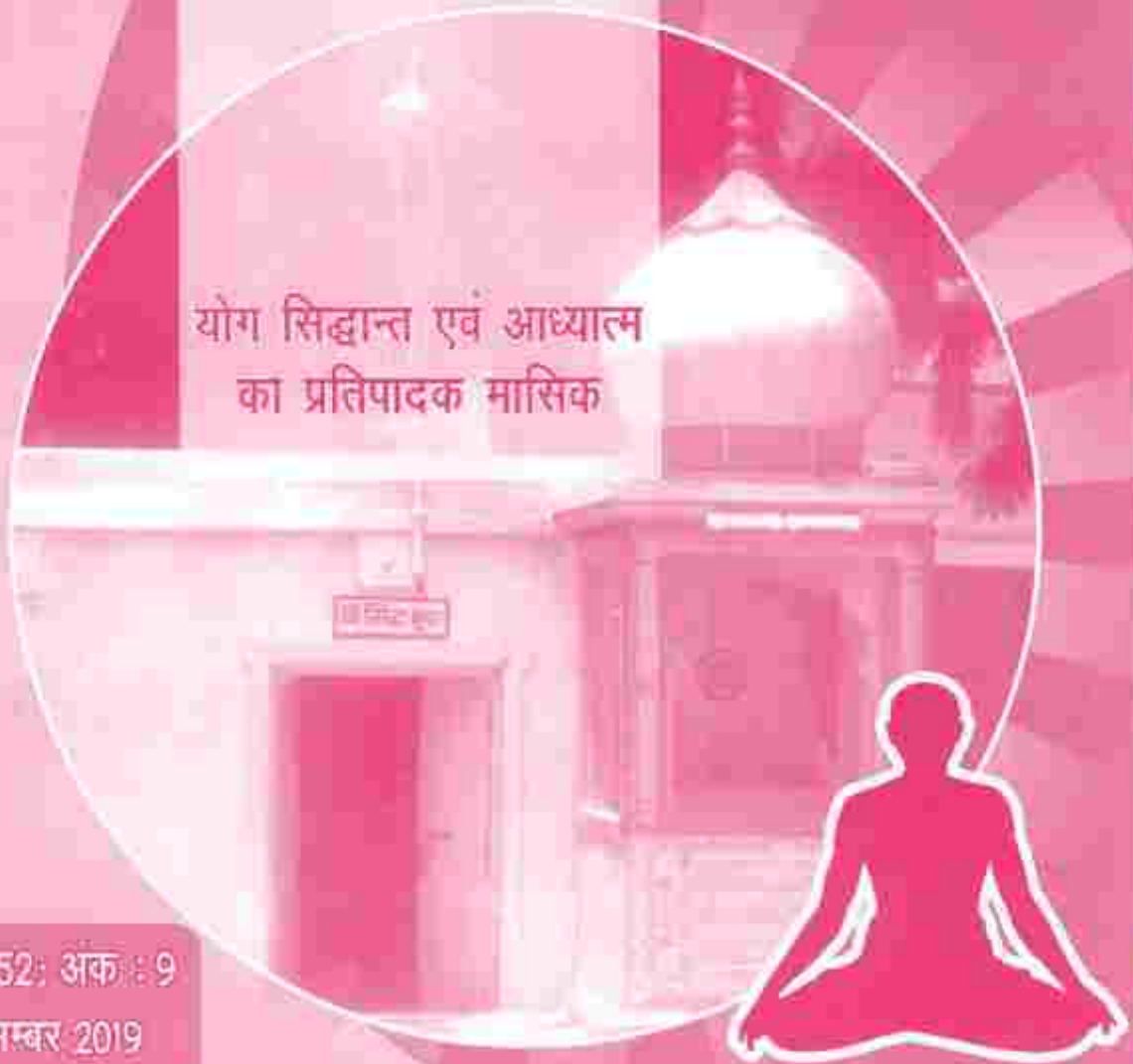

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म
का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 52; अंक : 9
दिसम्बर 2019

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.12.2019 मूल्य - एक प्रति : 20/-, वित्तपोषित : 20/-

अमृतकण

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विताः।।

(गीता १०/८)

मैं (भगवान्) ही समस्त उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत् की सृष्टि (भगवान्) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (राग कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन संयन करते हैं।

◆ ◆ ◆

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसू नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

(यजुर्वेद)

जैसे परमात्मा पक्षपात न करके सभी वर्ण के प्राणियों से समान रूप से प्रीति करता है, वैसे ही हम सब विद्यार्थी, ब्रह्मचारी, विद्वान्, राजकीय व्यक्ति, व्यापारी और सेवायें प्रदान करने वाले सभी नागरिक परस्पर समान और प्रीति पूर्ण व्यवहार करें।

◆ ◆ ◆

तदात्वे भानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(चाणक्य नीति)

कार्य करते समय, तत्काल या भविष्य में, जिसका फल अशुभ अर्थात् दुखिकारक हो, इसका विचार करके, ऐसे काम कदापि नहीं करना चाहिये। यह बुद्धिमानों का सिद्धान्त है।

◆ ◆ ◆

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो ज्ञान भारः क्रिया बिना।।

(शिवोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं है उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान दाढ़ी के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 52 दिसम्बर 2019 अंक : 09

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोग
अद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।।

-श्वेताश्वतरोपनिषद्

रंग-रूप से रहित होकर भी, छिपे हुए प्रयोजनवाला होने के कारण विविध शक्तियों के संयोग से सृष्टि के आदि में अनेक रूप रंग धारण कर लेता है तथा अन्त में यह सम्पूर्ण विश्व जिसमें विलीन भी हो जाता है, वह परमदेव परमात्मा एक अद्वितीय है। वह हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	9
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह	14
4.	ऐसे निहाल करते हैं श्री प्रभुजी– जगदीश राए बंसल	17
5.	अभ्यास और वैराग्य– डॉ. कृष्णकान्त शर्मा	21
6.	श्री गुरुदेव और उनका शक्ति-संचार– डॉ. विष्णुदत्त शर्मा	25
7.	अपने को और अपने शरीर को– श्री दर्शनानन्द	28
8.	प्राणायाम का तन तथा मन पर प्रभाव– श्री गौतम श्रीमाली	33
9.	अब तो हमें उबारो– श्री रामप्रकाश	38
10.	श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम आचार्य के दिसम्बर माह के योग प्रचार कार्यक्रम	39
11.	योग-आसन	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
त्रिवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख–

साधना स्थली एवं योगी का आहार

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

प्राणायाम एक हठ योग का अंग है। अतः प्राणायाम के साधक को हठोपयोगी नियमों का पालन करना चाहिए। इससे पहले लेख में हम बतला चुके है कि हठ योग का अधिकारी कौन होता है, प्राणायाम के अधिकारी को अत्यन्त उत्साही, वीर्यवान, संयमी एवं विक्तसेवी होना चाहिए। हमारे शास्त्रों का लेख है।

हठ विद्या परं गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता।।

जिस प्रकार से योग का अधिकारी अपने संयम नियमादि का पूर्ण रूपेण पालन करता है इसी प्रकार से हठ विद्या के अभ्यासी को अपनी साधना गुप्त रखनी चाहिए। गुप्त रूप से की हुई साधना बल की दात्री होती है। जो लोग इस विद्या को बाजार में प्रदर्शित करते रहते है और व्यापार का एक साधन बना चुके हैं, उनको यह विद्या नहीं देनी चाहिए। क्योंकि उनका काम तो उदर पालन ही बना रहता है उनको किसी प्रकार का वैराग्य नहीं है। श्री याज्ञवल्क्य मुनि अपनी स्मृति में कहते है–

विध्युक्त कर्मसंयुक्तः, काम संकल्प वर्जितः।
यमैश्च नियमैर्युक्तः, सर्व संग वियर्जितः।।
कृत विद्यो जितक्रोधः, सत्य परायणः।
गुरु शुश्रूषणस्तः, पितृमातृ परायणः।।
स्वाश्रमस्थः–सदाचारो, विद्वद्भिश्च सुशिक्षितः।।

अर्थात् जो व्यक्ति विधि युक्त कर्म करने वाला काम संकल्प से रहित यम नियमों का पालन करने वाला सब प्रकार के संग दोषों से दूर रहने वाला, विद्वान् क्रोध रहित, सत्य धर्म परायण, गुरुचरणारविन्द एवं माता–पिता का चरण सेवक, ब्रह्मचर्य गृहस्थादि किसी आश्रम का सेवन करने वाला, जिसने विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की हो, ऐसा व्यक्ति हठयोग विद्या का अधिकारी होता है।

हठयोगी का स्थान

हठयोग प्रदीपिका के रचयिता योगी आत्माराम ने हठयोग साधन के स्थान का निर्देशन अपनी हठयोग प्रदीपिका में निम्नांकित श्लोकों में भली प्रकार इस प्रकार किया है–

सुराज्ये धार्मिके देशे,
सुभिक्षे निरुपद्रवे।
धनुः प्रमाण पर्यन्तम्,
शिलाग्नि जल वर्जिते।।
एकान्ते मठिका मध्ये,
स्थातव्यं हठयोगिना।।

अर्थात् हठयोगी को ऐसे देश में अपने हठाभ्यास को मठ बनाना चाहिए जहाँ के शासक धर्म–परायण हों एवं वह देश सब प्रकार के धन–धान्य से पूर्ण हो, जहाँ किसी प्रकार के उपद्रव न होते हों, अकाल, वर्षा आदि से पीड़ित न हो। जहाँ पर साधू अपनी भिक्षा वृत्ति का पूर्ण रूपेण पालन कर सके। ऐसे पवित्र स्थान में लम्बे समय तक साधना की जा सके। जो स्थान तुषार–पात, जल एवं अग्नि से वर्जित हो। वहाँ पर चार हाथ चौकोर भूमि शुद्ध पवित्र करके हठाभ्यास के उपयुक्त मठ को बनावें और उसमें निवास करे। दृढ़ता पूर्वक अपना अभ्यास करता जाये।

योगी का साधना मन्दिर कैसा हो?

योगी को कैसे मठ में साधना करनी चाहिए इसका भी वर्णन श्री योगी आत्माराम ने हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार से किया है–

अल्पद्वारमरंध्रगर्त विवरं,
नात्युच्च नीचायतम्।
सम्यग्गोमय सांद्रलिप्त–
ममलं निःशेषजन्तूज्झितं।।
बाह्ये मंडप वेदि कूप,
रुचिर प्राकार संवेष्टितं।
प्रोक्तंयोग मठस्य लक्षण–
मिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः।।

अर्थात् साधनोपयोगी मठ किस प्रकार का होना चाहिए उसका वर्णन करते है जिसका मुख्य द्वार बहुत छोटा सा हो और किसी प्रकार के खिड़की जंगले उसमें नहीं रखने चाहिए। क्योंकि प्राणायाम करने वाले योगी का शरीर अग्नि से तपाये हुए सोना, चाँदी आदि धातुओं के समान बहुत ही तरल एवं निर्मल रहता है। कदाचित खिड़की जंगले आदि रखने से यकायक वायु के लगने से योगी के शरीर में पक्षाघात आदि का भय अनवरत बना रहेगा

अतः हठाभ्यासोपयोगी मठ में किसी भी प्रकार के छिद्र आदि नहीं रखने चाहिए और उसके मुख्य द्वार को छोटा ही रखना चाहिए, जिससे किसी प्रकार का उपद्रव द्वार से भी न हो सके। हठ मठ का मुख्य द्वार उत्तराभिमुख होना चाहिए। उस मठ में किसी प्रकार के गड्ढे विवर भी नहीं होने चाहिए। हठाभ्यास की भूमि बिल्कुल समतल ही होना उपयुक्त है। घरों के अन्दर जिस प्रकार चूहे आदि अपना बिल खोद लिया करते हैं, इस प्रकार के कोई भी विवर हठमठ में अन्तराय जनक हैं। वह मठ न तो बहुत ऊँचा ही होना चाहिए और न बहुत नीचा ही। क्योंकि यदि ऊँचा होगा तो चढ़ने में कष्ट रहेगा और नीचा होगा तो उतरने में कष्ट होगा। हठयोगी का वह स्थान भली प्रकार अच्छे गोबर से लिपा हुआ और छोटे–जन्तुओं मच्छर खटमल आदि जन्तुओं से रहित होना चाहिए। उस मंडप के बाहर चारों ओर दीवार रहनी चाहिए और दीवार के अन्तर्गत वेदी मंडप कुआ आदि सुन्दर बने होने चाहिए। इस प्रकार के पवित्र मठ का वर्णन हठाभ्यासी को सिद्धों ने अपने ग्रन्थों में किया है। नन्दिकेश्वर पुराण में हठ मठ का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है।

मन्दिरंरम्यविन्यासं,
मनोज्ञं गंधवासितम्।
धूपामोदादिसुरभि
कुसुमोत्करमण्डितम्।।
मुनि तीर्थ नदी वृक्ष,
पद्मिनी शैल शोभितं।
चित्र कर्म निवद्धं च
चित्र भेद विचित्रितम्।।
कुर्पाद्योगग्रहंधीमा–
न्सुरम्यं शुभ वर्त्मना।
दृष्टांचित्रगतांछांता–
न्मुनीन्याति मनः शमम्।।
सिद्धान्दृष्टवा चित्रगता–
न्मतिरभ्युद्यते भवेत्।।

अर्थात् योग मन्दिर की रचना अत्यन्त रमणीय मन को प्यारी लगने वाली एवं जिसमें दिव्य गन्ध का हर समय वास होनी चाहिए। योग मंडप पर सुगन्धित पुष्पों की लतायें फैली हुई हों जिससे दिव्य सुगन्ध हर समय आती रहे। वह भूमि तीव्र तपस्वियों और मुनियों से

आवासित हो गंगा–आदि कोई पवित्र नदी वहाँ बहती हो। अथवा तीर्थ–स्थली हो वहाँ पर छोटे–छोटे जलाशयों में अथवा नदी के प्रान्त में कमलिनी खिली हुई हो बड़े–बड़े सुन्दर हरे–हरे वृक्ष हों। योगमठ में बड़े–बड़े सुन्दर चित्र लिखे गये हों चित्रों में शान्त मुनियों के तपस्वियों एवं सिद्धों के चित्र वहाँ लिखे रहने चाहिए क्योंकि सिद्ध मुनियों के चित्र देखने से साधक के मन में एक उत्साह पैदा होता है। उस योग मंडप में किसी प्रकार का अशुभ चित्र न हो वह मठ सब प्रकार की मंगल मयी भावनाओं से पूर्ण हो उस मठ में सुन्दर–सुन्दर वेद मन्त्र एवं चौपाइयाँ लिखी हुई हों जिनको पढ़कर साधक का पूर्ण उत्साह बढ़े।

योगाचार्यों का आदेश

एवं विधे मेठ स्थित्वा
सर्व चिन्ता विवर्जितः।
गुरूपदिष्ट मार्गेण
योग मेव समभ्यसेत्

अर्थात् सब प्रकार की चिन्ताओं से विवीर्जत इस प्रकार के सुन्दर मठ में बैठकर गुरु पदिष्ट मार्ग से योगाभ्यास करे। ऐसा करने से योगी सिद्धि भाजन बन जाता है। हठाचार्यों ने उपरोक्त योगस्थली का वर्णन किया उसके साथ–साथ कुछ और भी आवश्यक एवं पालनीय नियम हैं जिनका पालन करने से साधक जल्दी ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया करता है। जगदात्मा अखिल लोक–पावन श्री कृष्णचन्द्र ने गीता में अपने मुखारविन्द से स्वयं कथन किया है।

युक्ताहार विहारस्य
युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य
योगी भवति दुःखहा।।

अर्थात् जिस योगी साधक का आहार एवं विहार समयोचित है और जिसकी हर चेष्टा समय के विभागानुसार है जो ठीक समय पर सो जाता है और ठीक समय पर उठ जाता है योग साधना उसके सब प्रकार के दुःख द्वन्द्व का नाश कर देती है। जिस व्यक्ति ने अपने आहार विहार पर कन्ट्रोल किया है उसके लिए योगाचार्यों का शुभ आदेश निम्नांकित श्लोक में स्पष्ट रूप से दिया गया है।

ब्रह्मचारी मिताहारी
त्यागी योग–परायणः।

अब्दादूर्ध्व भवेत्सिद्धो
नात्र कार्या विचारणा।।

अर्थात् जो साधक ब्रह्मचारी और मिताहारी है त्यागी एवं योग परायण है वह केवल एक वर्ष में ही सिद्ध हो जाता है। इसमें कोई भी शंका की बात नहीं है।

मिताहार का लक्षण

सुस्निग्ध मधुराहार–
श्चतुर्थांशविवर्जितः।
भुज्यते शिवसंप्रीत्ये
मिताहारः स उच्यते।।

हमारे आचार्यों ने उदर के चार भाग माने हैं उनमें साधक को चाहिए कि पेट के दो भागों को सुस्निग्ध एवं मधुर आहार से पूरित करे एक भाग को जल से और चौथे भाग को प्राण वायु की गति के लिए खाली रहने दे। जो लोग इस नियम को ख्याल में रखते हुए युक्ताहार करते हैं इसी का नाम मिताहार है और वे ही लोग मिताहारी कहलाते हैं।

योगी का आहार

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं
गव्यं धातु प्रपोषणम्।
मनोभिलषितं योग्यं,
योगी भोजन माचरेत्।।

अर्थात् पुष्टि कारक मधुर चिकना गौका दूध धातुओं के प्रपोषण करने वाली मनोभिलषित भोजनों को योगी करे। अर्थात् योगी को सात्विक आहार का ही सेवन करना चाहिए। और वह सब उपयुक्त मात्रा में करना चाहिए। सात्विक भोजन का लक्षण जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण ने गीता में इस प्रकार बतलाया है।

आयु सत्वबलारोग्य
सुखप्रीतिविवर्धनः।
रस्या स्निग्धा स्थिरा ह्रद्या
आहारः सात्विकः प्रिया।।

अर्थात् जो आहार बुद्धिवर्धक हों आयु को बढ़ाने वाले हों स्वास्थ्य वर्धक हों निरोगता को देने वाले हों सुख और प्रेम को बढ़ाने वाले हों चिकने जिनकी शक्ति कायम रहने वाली हृदय को बल देने वाले इस प्रकार के आहार सात्विक कहलाते हैं एवं ये आहार सतोगुण

प्रकृति वाले को ही प्यारे होते हैं। इस प्रकार के अन्नों में गौ का दूध, गौ का घी, गेहूँ, चावल, शहद, मिश्री, लौकी, घिया, परमल एवं कन्दमूल फलादि ही योगी के लिए उचित आहार हैं। इस प्रकार के साधक बहुत जल्दी सिद्धि को पा जाया करते हैं। जो भाग्यवान योगी साधक अपनी इन्द्रियों के ऊपर जय प्राप्त कर लेते हैं वह संसार में कौन सी सिद्धि को नहीं पा सकते। अजर अमर हो जाना उनके लिए अत्यन्त सहज एवं खेल जैसी चीज है।

सिद्धेबिन्दौ महायत्ने किं न सिद्धयति भूतले।

अर्थात् जिसने प्रयत्न करके बिन्दु जय कर लिया है वे लोग संसार में कौन सिद्धि नही पा सकते अर्थात् सभी कुछ पा सकते हैं।

❀❀❀❀❀❀❀

दृढ़ संकल्प

वह कौन सी वस्तु है जो मनुष्य को अपने कार्य पर दृढ़ता पूर्वक जमा देती है? वह कौन सा पदार्थ है जिससे मनुष्य निराशा के अंधकार में रहते हुए भी आशा के प्रकाश की झलक देखा करता है? वह क्या चीज है जो मनुष्य को विपत्ति सहने में धैर्य देती है? वह क्या चीज है जो दुःख में भी मनुष्य को आनन्द से सुख-सम्पन्न दिखाती है? वह क्या चीज है जो दरिद्रता के पंजे में फँसे हुए मनुष्य को आश्वासन देती रहती है? वह कौन सी वस्तु है जो लाखों विपत्तियों के गिरने पर भी उसे धीरतापूर्वक खड़ा रहने का बल देती है?

दृढ़ संकल्प ही वह चीज है जो हमसे जोर से कहते हैं कि अपने लक्ष्य की ओर कदम उठा दो। वही हमारी आत्मा है, वही हमारी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि है, वही हमारा पथ-प्रदर्शक है। वही हमारी विघ्न-बाधाओं पर जय प्राप्त कर हमारे रास्ते को साफ करते हैं।

—श्रुतिसार

सम्पादकीय–

निःश्रेयस व अभ्युदय का एकमात्र साधन–

ध्यान योग

–आचार्य (डॉ.) दासलाल जी महाराज

सांख्य–दर्शन का सूत्र है 'ज्ञानात् मुक्ति' अर्थात् ज्ञान से मुक्ति मिलती है। ज्ञान का तात्पर्य आत्म–ज्ञान या पुरुष–प्रकृति ज्ञान से है। प्रकृति–पुरुष के ज्ञान के लिए योग–मार्ग ही एकमात्र अवलम्ब व उपाय है। शास्त्रों में मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग आदि अनेक प्रकार के योग के साधनों का वर्णन मिलता है, परन्तु इन सबमें राजयोग ही सर्वोत्कृष्ट एवं परमोपादेय है, जिसे दूसरे शब्दों में ध्यानयोग के नाम से भी पुकारा जाता है। अन्य जितने भी प्रकार के योग–साधन हैं वे राजयोग के पूरक ही हैं। हठयोग प्राण–साधना का अवलम्ब लेकर साधक को अपने आध्यात्म पथ पर आरूढ़ करता है। हठयोग भी राजयोग के लिए ही होता है। साधन कोई भी हो, परन्तु सब में मन की एकाग्रता मुख्य है। यहाँ से राजयोग की वर्णाक्षरी शुरू होती है। उपनिषदों में ध्यान योग की महिमा व उपादेयता बतलाई गई है–

आत्मसाक्षाद् भविद्यस्मात्,
तस्माद् ध्यानं विशिष्यते।

क्योंकि ध्यानयोग से आत्म–साक्षात्कार होता है, अतः यह सर्वश्रेष्ठ। आगे भी–

यदि शैल समं पापं विस्तीर्ण बहुयोजनम् विद्यते ध्यानयोगेन नान्या कदाचन।

(ध्यानबिन्दु उपनिषद्)

आगे भी ध्यानयोग की महिमा के मन्त्र पढ़िये–

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा,
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्वस्ततस्तु,
तं पश्यते निष्कलं ध्यानमानः।।
संप्राप्तैनमृषयो ज्ञान तृप्ताः,
कृतात्मानी वीतरागाः प्रशान्ताः।

ते सर्गवं सर्वतः प्राप्य धीराः,
युक्तात्मानः सर्वमैवाऽऽविशन्ति।।

(मुण्डकोपनिषद्)

इन सब श्रुति वाक्यों से सिद्ध है कि आत्म–तत्व का साक्षात्कार ध्यानयोग से ही सम्भव है। अपने मन को बहिर्मुखी वृत्ति से अन्तर्मुखी बनाना ही ध्यानयोग है। काम, क्रोधादि, विकारों तथा राग–द्वेषादि अनादि क्लिष्ट संस्कारों के कारण मन स्वभाव से ही बहिर्मुखी रहता है। कठोपनिषद् का मन्त्र है–

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू–
तस्माम् पराङ पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्,
आवृत्त चक्षुरमृतत्वाभिच्छन्।।

अर्थात् स्वयम्भू से हमारी ज्ञानेन्द्रियों को स्वभाव से ही बहिर्मुखी बनाया, इसी से वह बहिर्मुखी है अन्तर्मुखी नहीं। कोई–कोई धीर योगी अमृतत्व की इच्छा करता हुआ अपनी समस्त ज्ञानेन्द्रियों को बन्द कर अन्दर की ओर बदलकर आत्म–तत्व को पाता है। यद्यपि हमारी आन्तरिक व बाह्य समस्त क्रियाएँ आत्म–तत्व की शक्ति से ही संचालित हो रही हैं, फिर भी अज्ञान के कारण जीव इसका अनुभव नहीं करता। योगी लोग ही ध्यानयोग के द्वारा प्रयत्न करते हुए उस आत्म–तत्व को देखते हैं।

यतन्तो योगिनश्चैनं,
पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो,
नैन पश्यन्त्य चेतसः।।

अर्थात् योगी लोग ध्यानयोग द्वारा अपने आप में स्थित होकर उस तत्व को देखते हैं, परन्तु मूढ़ अज्ञानी पापयुक्त होने के कारण उसे नहीं देख पाते।

परमात्मा की अध्यात्म सृष्टि मनुष्य शरीर में ही विद्यमान है। योगियों के अनुभव के आधार पर इस शरीर में क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध, आज्ञा तथा सहस्त्रार ये सात चक्र हैं, ये उत्तरोत्तर चेतना के विकास के केन्द्र हैं। प्राचीन आयुर्वेद के अनुसार भी हमारे शरीर के मर्म–स्थानों में अनेक ग्रन्थियाँ (Glands) हैं जो चेतना के केन्द्र हैं, जो हमारे शारीरिक व मानसिक गतिविधियों को नियन्त्रित व कार्यान्वित करते हैं। इन ग्रन्थियों के अन्तःस्राव के घटाव व बढ़ाव से ही हमारी वृत्तियों में भी उत्थान–पतन आता

रहता है। ये ग्रन्थियाँ मुख्यतः मस्तिष्क, भ्रूमध्य, हृदय, नाभि, मूलाधार आदि स्थानों पर ही हैं। आयुर्वेद के अनुसार चेतना या ज्ञान का स्थान हृदय ही है, परन्तु स्थान भेद से दो हृदय की कल्पना करते हैं—(1) रक्त संचालक हृदय, (2) ज्ञान–संचालक हृदय। ज्ञान–संचालक हृदय मस्तिष्क को ही मानते हैं, क्योंकि मस्तिष्क से ही संज्ञावाही और चेष्टावाही नाड़ियाँ निकलती हैं। सुश्रुत ऋषि ने हृदय का स्थान वक्षोगुहा माना है–

नाभितो विवस्तिमात्रं,
कण्ठ देशात् षडंगुलम्।
उरसस्तद्वि, जानीयात्,
शेषं तु हृदयं मतम्।।

आगे भी–

हृदयम् चेतनास्थान मुक्तं
सुश्रुत देहिनाम्।।

(सु. शा. अ. 4)

उपरोक्त वचनों से सिद्ध होता है कि हृदय–मन, ज्ञान, बुद्धि, चेतना आदि का स्थान है। मन का स्थान यद्यपि हृदय है, परन्तु कार्यक्षेत्र मस्तिष्क होता है। जब मन अपने स्थान पर होता है। मनुष्य शयन करता है, परन्तु जब अपने कार्यक्षेत्र मस्तिष्क में चला जाता है तब इन्द्रियाँ अपने कार्य में प्रवृत्त होती हैं। हृदय और मस्तिष्क का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। जैसा कि अथर्ववेद में बताया गया है–

मूर्धानमस्य संसोव्याथर्वा,
हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रेरयत,
पवमानोदधि शीर्षतः।।

(अथर्व 10–2–16)

अर्थात् अथर्वा या ईश्वर मनुष्य के सिर और हृदय को अनुस्यूत (सीये हुए) किये हुए हैं। अतः वायु शिरः प्रदेश में मस्तिष्क के ऊर्ध्व भाग में रहकर इन्द्रियों को प्रेरित करता है। वायु शरीर में प्रधान होता है, उसी की प्रेरणा से मन भी इन्द्रियों पर शासन करता है। जैसा कि सुश्रुत स्थान में भी आया है–

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदान,
समान व्यानापानात्मा।

प्रवक्ता श्चेष्टानामुच्चावचानां,
नियन्ता प्रणेता च मनसः।।

प्राणापान, अपान, व्यानादानात्मक जो वायु है, वह सब चेष्टाओं का प्रवर्तक तथा मन का नियन्ता और प्रणेता कहा गया है। शरीर में कफ–पित्त व वायु यह त्रिदोष हैं, इनमें कफ व पित्त को पंगु ही माना जाता है। वायु ही इन दोनों को शरीर के एक स्थान से दूसरे स्थान को मेघवत् ले जाती है।

उपरोक्त चक्रों या चेतना केन्द्रों पर ध्यान–योग के द्वारा चित्त को एकाग्र किया जाता है। मन और प्राणवायु को उस चक्र विशेष पर स्थिर कर एकाग्र किया जाता है, जिससे उस चक्र का मलावरण क्षय हो जाता है। योगी दिव्य ज्ञान से सम्पन्न होने लगता है, यही योगी की अन्तर्जगत की यात्रा है। मूलाधार आदि चक्रों पर ध्यान करता हुआ योगी क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश तत्व का साक्षात्कार करता हुआ एवं उसका अधिकार पाता हुआ मन, बुद्धि एवं अहंकार का साक्षात्कार कर अन्त में सहसार–चक्र में अवस्थित होकर निर्बीज–समाधि में लीन हो जाता है। योगी के मन और प्राण दोनों ब्रह्मरन्ध्र में स्थित रहते हैं। 'सिद्धयोग' में सिद्ध–गुरु अपने संकल्प मात्र से प्राण व मन को चक्र विशेष में स्थिर कर देता है, जिससे साधक के मल–कषायों का क्षय हो जाता है, योगी अतीन्द्रिय शक्ति–सम्पन्न हो जाता है।

योग–दर्शन के अनुसार हमारे शरीर में 72 हजार नाड़ियाँ हैं, ये नाड़ियाँ ही चित्त की प्रसार–भूमि हैं। इन नाड़ियों का शोधन परमावश्यक होता है। प्राणायाम के द्वारा प्राणों के घर्षण से इन मलों का क्षय किया जाता है–"प्राणायामैर्दहेत्तु दोषान" के नियमानुसार प्राणायाम से दोषों का क्षय किया जाता है। मनुस्मृति में प्राणायाम का फल इस प्रकार बतलाया गया है–

दह्यन्ते ध्मायमानानां,
धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणा दह्यन्ते,
दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अन्यत्र भी–

तपो न परं प्राणायामात्ततो,
विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति।

योग–दर्शन में प्राणायाम का फल बतलाते हुये भगवान पतंजलिदेव जी लिखते

है–'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।' प्राणायाम से प्रकाश के आवरण का क्षय हो जाता है। प्राणायाम का दूसरा फल धारणासु च योग्यता मनसः' कहकर बतलाया गया है। प्राणायाम से मन की एकाग्रता की योग्यता बढ़ती है। आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए ध्यानयोग जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक लौकिक उन्नति के लिए भी है। वर्तमान समय में व्याप्त भ्रष्टाचार, व्यभिचार, हिंसा एवं अशान्ति के नाश का उपाय ध्यानयोग ही है।

साधक में विद्यमान दुष्प्रवृत्तियाँ ध्यानयोग के अभ्यास से दैवी–सम्पदा में बदल जाती हैं। साधक में सत्य, अहिंसा, दया व विश्व–बन्धुत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है। अत्यन्त क्रूर, कामी व हिंसक वृत्ति वाला व्यक्ति भी ध्यानयोग के द्वारा परम् सदाचारी, दयालु व परोपकारी व्यक्ति बन जाता है। पूज्यपाद गुरुदेवजी बतलाया करते हैं कि आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में ऐसे अनेकों व्यक्ति आये, जो पहले अत्यन्त व्यभिचारी, दुराचारी एवं क्रूर थे, परन्तु श्री प्रभुजी ने उन्हें ध्यानयोग का आदेश दिया और उनके चित्त के मल का क्षय कर उन्हें योग की उच्चतर भूमिकाओं में पहुँचा दिया। "यस्य प्रसादात् पतिताः सुपावना भवन्ति संसार सुनारणा शिवाः।" जिनकी कृपा से पतित भी पावन हो जाते हैं और संसार को तारने वाले हो जाते हैं।

ध्यानयोग के द्वारा योगी "यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति सुनिश्चितम्" के नियमानुसार लौकिक कामनाओं को भी निश्चित रूप से पा जाता है और दूसरे शब्दों में, उसे युक्ति और मुक्ति दोनों मिल जाती हैं। उसके दोनों हाथों में लड्डू रहता है। साधक में जो राग–द्वेषादि क्लिष्ट अनादि संस्कार हैं वे ध्यानयोग से ही क्षय हो सकते हैं अन्य कोई उपाय नहीं है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए सांख्य–दर्शन का एक सूत्र है "रागोपहतिर्ध्यानम्" अर्थात् राग के नाश का उपाय ध्यानयोग है।

इस प्रकार सिद्ध है कि ध्यानयोग के द्वारा ही साधक पुरुषार्थ–चतुष्टय को प्राप्त कर सकता है। अन्तर्चेतना विकास के साथ–साथ ध्यान–योगी अपने दिव्य–आलोक से समस्त प्रदेश को शान्ति एवं सुख प्रदान करता है।

संसार में जिन–जिन महापुरुषों ने अपनी दिव्य–सुगन्ध से इस विश्व–वाटिका को सुगन्धित किया है, वे सब ध्यान–योगी एवं अन्तर्जगत के वेत्ता थे। अतः संसार–सागर तितीर्षु को इसका अवश्य ही अवलम्बन लेना चाहिए।

॥ ॐ श्रीरामलाल प्रभवे नमः॥

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

भगवान कृष्ण ने रंगभूमि के द्वार पर पहुँच के देखा कि महावत की प्रेरणा से द्वार रोककर कुवलयापीड नामक दीर्घकाय हाथी खड़ा है। मेघ के समान गम्भीर वाणी से महावत को ललकार कर कहा—ओ! महावत हमारे मार्ग से हट जा। देर मतकर नहीं तो हाथी के साथ तुम भी यमालय की राह देखने लगोगे। महावत ने चिढ़कर अंकुश मारकर हाथी को श्रीकृष्ण की ओर बढ़ाया।

कुलयापीड ने श्रीकृष्ण को सूँड में लपेट लिया, परन्तु भगवान पकड़ से बाहर सरक आये और उसे एक घूँसा मारकर उसके पैरों के बीच छिप गये। चोट से पीड़ित हाथी उन्हें इधर-उधर खोजता रहा। इधर भगवान ने उसकी पूँछ पकड़कर पीछे घसीटते हुये खेल सा खेलने लगे। हाथी क्रोध में अन्धा हो रहा था, वह बार-बार व्यर्थ प्रहार अपने दाँतों से इधर-उधर करता रहा। भगवान ने तब सामने आकर उसकी सूँड पकड़कर धरती पर पटक दिया। हाथी के दोनों बड़े दाँत पैरों से दबाकर उखाड़ लिया और उन्हीं दाँतों के चोट से हाथी एवं महावत को यमालय पहुँचा दिया।

श्रीकृष्ण ने हाथ में दाँत लिये रंगभूमि में प्रवेश किये उनका शरीर रक्त और मद की बूँदों से सुशोभित था। मुख पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं।

जिस समय श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ रंगभूमि में पधारे, उस समय पहलवानों को वज्र शरीर धारी, साधारण मनुष्यों को नर रत्न, स्त्रीयों को मुर्तिमान कामदेव, गोपों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को दण्ड देने वाले शासक, माता-पिता समान वृद्धों को शिशुवत्, कंस को काल रूप, योगियों को परमतत्व और भक्तों को अपने इष्टरूप दिखाई पड़े—

मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां
तत्वं परम योगिनां।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो
रंग गतः साग्रजः॥7॥

अ. 43 स्क. 10

राजन्! वैसे तो कंस बड़ा धीर-वीर था परन्तु कुलयापीड वध से वह घबड़ा गया।

इधर मंचासीन जन समुदाय श्रीकृष्ण–बलराम के सौन्दर्य, गुण, माधुर्य, निर्भयता तथा पूर्ववर्ती उनके लीलाओं का आपस में वर्णन करने लगे। ये साक्षात् भगवान नारायण के अंश हैं। इस पृथ्वी पर वसुदेवजी के घर अवतीर्ण हुये हैं।

इन्होंने ही पूतना, तृणावर्त, शंखचूड़, केशी, धेनुक आदि दैत्यों का वध किया है तथा यमलार्जुन का उद्धार किया है। ग्वालों को दावानल की ज्वाला से बचाया है। कालियानाग का दमन और इन्द्र का मान–मर्दन किया है। गोवर्धन धारण आदि की चर्चा आपस में करने लगे।

अखाड़े में नगाड़े तुरही आदि बाजे बज रहे थे। उस समय चाणूर ने श्रीकृष्ण एवं बलराम जी को मल्ल हेतु बातें बनाता हुआ आमंत्रित किया। जोड़ बद दिये जाने पर श्रीकृष्ण चारुण से तथा बलराम जी मुष्टिक से जा भिड़े। दाँव–पेंच एक दूसरे पर अजमाते हुये, एक दूसरे को पछाड़ने की चेष्टा में मल्ल कौशल का भरपूर उपयोग करने लगे।

दंगल को देखने हेतु नगर की बहुत–सी महिलायें भी आयी हुई थीं। वे कहने लगीं कंस के सभासद बड़े अन्यायी हैं। यह कितने दुख की बात है कि राजा के सामने ही ये बली पहलवानों से निर्बल बालकों को लड़वा रहे हैं। देखो, श्रीकृष्ण शत्रु के चारों ओर पैंतरा बदल रहे हैं। मुख पर पसीने की बूँदें शोभायमान हैं। जिस समय पुरवासनी स्त्रियाँ यह सब बातें कर रही थीं, उस समय योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने मन ही मन शत्रु को मार डालने का निश्चय किया–

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः।
शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान् भरतर्षभ।।17।।

अ. 44 स्कं. 10

अत्यन्त क्रोधित हो चाणूर ने श्रीकृष्ण की छाती पर प्रहार किया। भगवान तनिक भी विचलित नहीं हुये। उन्होंने चाणूर की दोनों भुजाओं को पकड़ कर उसे आकाश में चक्राकार बड़े वेग से घुमाकर धरती पर पटक दिया। वह मारा गया। इधर बलराम जी ने एक जोर का चाँटा मुष्टिक को मारा वह खून उगलता पृथ्वी पर आ गिरा। बलराम जी को मारने को उद्यत कूट नामक पहलवान आया उसे घूंसे के प्रहार से धराशायी कर दिया। तोशल को श्रीकृष्ण ने तिनके की तरह चीर कर दो टुकड़े कर दिये। सभी पहलवान मारे गये। जो बचे वे भाग खड़े हुये।

श्रेष्ठ पुरुष "धन्य है, धन्य है" इस प्रकार उद्घोष करते हुये श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगे। कंस को बड़ा दुःख हुआ, वह चिढ़ गया। मंच से चिल्लाता हुआ बोला सभी गोपों सहित

इस कृष्ण–बलराम को मार डालो, मार डालो।

तभी भगवान श्री कृष्ण एक छलांग में उस ऊँचे मंच पर गरुड़ सदृश पहुँचकर कंस को घसीट कर जमीन में पटक कर मार डाला। कंस की सारूप्य मुक्ती हुयी क्योंकि कंस नित्य–निरन्तर बड़ी घबराहट के साथ श्रीकृष्ण का ही चिन्तन करता रहता था। वह खाते–पीते, सोते–चलते, बोलते और साँस लेते–सब समय अपने सामने चक्र हाथ में लिये भगवान कृष्ण को ही देखता रहता था। इस निरन्तर चिन्तन के फलस्वरूप उसे भगवान के उसी रूप की प्राप्ति हुई–जिसकी प्राप्ति बड़े–बड़े तपस्वी योगियों के लिये भी कठिन है।

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं
पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपञ्श्वसन्।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो य–
स्तदेव रूपं दुखापमाप।।39।।

अ. 44 स्कं. 10

कंस के कंक आदि आठ छोटे भाइयों ने बड़े भाई का बदला लेने के लिये भगवान श्रीकृष्ण तथा बलराम जी की ओर दौड़े। बलराम जी ने परिघ उठाकर उन्हें मार डाला।

उस समय भगवान के विभूति स्वरूप ब्रह्मा, शंकर जी आदि देवता पुष्पों की वर्षा करते हुये स्तुतिगान करने लगे।

मारे गये राजा कंस एवं उसके भाइयों की पत्नियाँ मरे हुये अपने पतियों के पास बैठकर विलाप करने लगीं।

भगवान श्रीकृष्ण ने उन रानियों को धैर्य बँधाया, सान्त्वना दी फिर लोक रीत से उनका क्रियाकर्म करवाया।

तदोपरान्त भगवान श्रीकृष्ण एवं बलराम जेल में जाकर अपने माता–पिता को बँधन से छुड़ाया और उनका चरण वन्दन किया।

देवकी एवं वसुदेव जी ने उन्हें जगदीश्वर समझकर अपने हृदय से नहीं लगाया।

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

ऐसे निहाल करते हैं श्री प्रभुजी

जगदीश राए बंसल ''अधम'' 9212434003

काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले त्रय जग पावन, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं आराध्य देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज हर समय, हर स्थान पर और हर अशरण-शरण के कलिष्ट संस्कारों का भुगतान यों चुटकी में कर रहे हैं, इस मर्म को श्रेष्ठतम साधक भी नहीं जान पाया है। गुरु देव भगवान किसी का संस्कार प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होकर, किसी का सर्जन बनकर, किसी का न्यायधीश बन कर, किसी का फकीर बन कर, किसी का दरोगा बन कर, किसी का मौलवी बनकर, किसी का अनुभूति या प्रेरणा देकर अथवा किसी का श्री मुख से आदेश दे कर और किसी का अपने किसी लाड़ले बच्चे को माध्यम बना कर दीन-दुखियों को तरह-तरह से निहाल करते आ रहे हैं।

ऐसा ही एक कृपा प्रसंग गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के विशेष कृपापात्र एक ''बालक'' (गुप्त नाम) ने इस प्रकार बताया कि बात सन् 1984 की है। उन दिनों मैं सहारनपुर स्थित कैम्पा कोला फैक्ट्री में असिस्टेन्ट के पद पर कार्य कर रहा था। और इस कार्य के साथ-साथ फैक्ट्री के ही श्री दुर्गा मन्दिर की सेवा का लाभ भी ले रहा था। उसी फैक्टरी में एक पूर्ण शर्मा नामक ब्राह्मण लड़का मजदूरी का कार्य करता था। एक दिन भोजन अवकाश के समय वार्तालाप करते-करते पूर्ण को निराश-हताश देख कर मैं पूछ बैठा कि भाई इतना परेशान क्यों है.....? प्रत्युत्तर में पूर्ण ने मर्मज्ञता से बतलाया कि बाबू जी क्या-क्या बताऊँ, हमारे घर गर्भस्थ शिशु मर जाता है....चोरी हो जाती है..... इत्यादि। हमने बहुत पण्डितों-तान्त्रिकों से सम्पर्क किया, सभी कहते हैं कि तुम्हारे घर पर तो ब्रह्मराक्षस की कुदृष्टि है, जिसका उपाय हमारे बूते से बाहर की बात है। स्वयं मेरा फूफा भी उच्च कोटि का ज्योतिषी एवं तान्त्रिक है। उसके लाख उपाय करने पर भी हम मायूस से रहे। मेरे तो जीवन को ही धिक्कार है। अपना हारा और जोरू का मारा कौन कहे? मेरे कहने का भाव यह है कि-

हजारों खुशियाँ भी कम हैं-एक गम भुलाने के लिए।
एक गम ही काफी है जिन्दगी रुलाने के लिए।।

सिद्ध योगाधिपति गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का वह कृपापात्र "बालक" जो श्रद्धा एवं विश्वास से सराबोर था, पूर्ण शर्मा के अवसाद से द्रवित हो कर बोल उठा कि जहर की काट नारियल का पानी नहीं होता प्यारे! यह जीवन विपत्ति की परिभाषा है, समझा! ऐसे करना कि आज छुट्टी के पश्चात् मैं तुम्हारे गाँव घर चलूँगा। उदास होने की आवश्यकता नहीं है।

संकट को देख वीर घबराया नहीं करते।
कुछ ऐसे फूल हैं जो मुरझाया नहीं करते।।

योजनानुसार, मैं अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक प्रभु श्री राम लाल जी महाराज का निज हाथों से बनाया स्वरूप लेकर साईकिल द्वारा पूर्ण के साथ उनके घर पहुँचा। सायंकाल जगत नियन्ता प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की नियमानुसार लोकोपकारी आरती की। आरती का फलदायी जल परिजनों को प्रसाद में दिया तथा गुरु देव जय–जय सद्गुरु जय जय ..... गाते–गाते सारे घर में जल छिड़क दिया। पूर्ण ने आरती का विधान देख लिया था और बाद में भी बतला दिया गया कि–

उसके दर पै सगुन मिलता है,
उसकी दुआ से नूर मिलता है।
जो झुक गया नियन्ता के चरणों में,
उसे बहुत कुछ जरूर मिलता है।।

कुछ अन्तराल पश्चात् संस्कार वेग के चलते मैं कोका–कोला फैक्टरी से त्याग पत्र देकर विद्याध्ययन हेतु चण्डीगढ़ प्रस्थान कर गया। शिक्षा विभाग द्वारा दीर्घकालीन अवकाश के अवसर पर जब मैं स्वगृह लौटा तो मेरी भाव विहल मम्मी ने बतलाया कि एक लड़का जिसने अपना नाम पूर्ण शर्मा बताया लड्डू का डब्बा लेकर आया था। वह पुत्र रत्न प्राप्ति से आह्लादित था और सरस वाणी एवं निष्ठा के साथ मंगलकारी शब्दों से तुम्हारा बार–बार साधुवाद कर रहा था। तदुपरान्त जब कभी पूर्ण शर्मा मुझ से मिला तो नजारा कुछ और ही था–

चार मिले चौसठ खिले बीस मिले हय जोड़।
गुरु भाई सौ गुर भाई मिले विहंसे सात करोड़।।

पूर्ण ने अति हर्षोल्लास से बताया कि साहिब जी आप जब क्षण–क्षण पल–पल के रक्षक योग योगेश्वर श्री प्रभु जी की आरती करके लौट आए थे तो शीघ्र पश्चात् हमारे घर एक विलक्षण घटना घटी। हुआ यूं कि एक दिन वही मेरे पूज्य फूफा जी हमारे घर पधारे।

घर में प्रवेश करते हुए ही हड़बड़ाए–घबराए से घर की बुजुर्ग महिलाओं से पूछने लगे कि तुम्हारे घर कोई दाढ़ी वाले बाबा जी आए हैं? उनके हाथ में तमतमाता चिमटा है, सिर पर लम्बी–लम्बी जटाएँ हैं और वस्त्र के नाम पर मात्र लंगोटी लगाए हैं। वह बाबा पूरे घर का चक्कर लगाकर, पुनः द्वार पर लौट आते हैं। किसी भी प्राणी को घर में प्रवेश नहीं करने देते। मैं तो येन–केन प्रकारेण उनसे विशेष मनुहारी आज्ञा ले कर अन्दर आ पाया हूँ। और कहूँ–अब तुम्हारे घर जो ब्रह्म राक्षस था, वह मारा जा चुका है। इस कृपालु बाबा जी महाराज की अनुकम्पा से अब इस घर में कोई अनिष्ट नहीं हो सकता....। इन बातों को हमारे घर की महिलायें हतप्रभ हो कर सुनती रही मगर उन अगाध करुणा सागर श्री प्रभुजी के विषय में एक शब्द भी बोलने से अनभिज्ञ रही। सायं काल जब मैं घर आया तो फूफा जी की बातें घर में आग की तरह पसर रही थीं। हम नहीं जानते थे कि जिन घरों में संकट मोचक भव भय हारी श्री प्रभु जी का स्वरूप विराजमान हैं उन भाग्यशाली घरों में श्री प्रभुजी का अमंगल हारी तेज रहा करता है। इसी उहा–पोह के चलते जब मेरे फूफाजी विश्राम के लिए शयन कक्ष में जाने लगे तो उनकी दृष्टि सिद्ध योगाधिपति महा प्रभु रामलाल जी महाराज के स्वरूप पर अटक गई। वे वहीं ठिठक कर रुक गए बोले, ये बाबा जी ही तो हैं, जो तुम्हारे घर के बाहर खड़े हैं। यह प्रत्यक्षानुभव सुन कर हम अचम्भित हो गए कि मात्र प्रभुजी का स्वरूप रखने से और अल्पज्ञता से आरती करने भर से हमें ब्रह्मराक्षस से मुक्ति मिल गई?

धन्य हैं हम और धन्य हैं आप साहिब जी। आपने इतनी सहजता से इतना बड़ा उपकार कर दिया। हम तो जीवन का अर्थ ही अनर्थ कर चुके थे। आपने हमारे संकट को समुद्र में डूबो दिया। न जाने किस पूर्व कृत शुभाशुभम कर्म का फल मिला है। बाबू जी सच–सच बताएँ आप कौन हैं?

आप फरिश्ता हैं या परवर दीगार हैं,
टका तक लगा नहीं, हम सदा बहार हैं।
खुश नसीब की तकदीर हैं आप,
श्री प्रभु जी की लकीर हैं आप।।

अरे नहीं नहीं पूर्ण भाई–

मैं पहले करूर था अब अकरूर हो गया,
कभी कांटे का झाड़ था, अब खजूर हो गया।
ना मैं फरिश्ता ना मैं परवर दीगार,
बस प्रभु जी का करिश्मा तो हो गया।।

पूर्ण नहीं प्रभू जी के करिश्मों को कोई जान नहीं सकता। चाहे कोई सिर के बाल गिन ले, कोई आसमां के तारे गिन ले, कोई समुद्र की लहरें गिन ले, कोई सूर्य की किरणें गिन ले... लेकिन अखण्ड मण्डलाकार योग योगेश्वर प्रभू श्री रामलाल जी महाराज एवं आशुतोष करुणा सागर गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की प्रति पल हो रही असीम कृपाओं को कोई नहीं गिन सकता। ऐसे सद्गुरु देव जी के श्री चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम-अभिनन्दन-वन्दन-नमन.....।

❀ ❀ ❀

उपरोक्त कृपा प्रसंग के मुझे (लेखक) गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की सुनाई एक बात याद हो आई। गुरु देव जी ने बतलाया था कि गुरु सत्ता में सभी देवी देवताओं का समावेश होता है। गुरु देव का चिन्तन करने वालों का कभी अनिष्ट नहीं होता। एक उदाहरण देकर समझाता हूँ कि कुराना गाँव जो अलुपुर के साथ लगता गांव है, वहाँ मुझ से एक बच्चे ने दीक्षा ली थी। उसकी साधना बहुत अच्छी थी। उसका एक बूढ़ा बाबा था जो प्रभु जी के स्वरूप से चिड़ता था। कहता था यह राम का चित्र नहीं, कृष्ण का चित्र नहीं, किसी देवी या देवता का चित्र नहीं, अपितु किसी बाबा का चित्र है....। अन्ततः एक दिन बूढ़ा बाबा श्री प्रभू जी के स्वरूप को फेंक देने को उत्तेजित हो गया। अतः वह लड़का प्रभू जी के उस स्वरूप को उठाकर कुराना के शिव मन्दिर स्थित आश्रम में ले आया। अब देखिए क्या हुआ उस घर में, देखते ही देखते 2-3 मौतें हो गईं। गर्भिणी स्त्री पर कुप्रभाव चल पड़ा। परिणामतः वे लोग मेहन्दीपुर बालाजी चले गए। वहाँ पर हनुमान जी के दूतों ने प्रेत आत्माओं को मार लगाई। प्रेत आत्माओं ने कहा कि हमने तो बहुत पहले ही सारे परिवार को खत्म कर देना था, मगर उनके घर में चिमटा लिये एक बाबा खड़े रहते थे। उनके भय से हम कुछ भी मन माना नहीं बिगाड़ सके। अब वह बाबा वहाँ नहीं है, अतः उस स्त्री के पेट में जो बच्चा है उसे हम समाप्त कर देंगे।

श्री हनुमान बाबा के दूतों ने उन कुराना वालों से कहा कि यदि तुम प्रेत आत्माओं की पीड़ा से बचना चाहते हो तो श्री प्रभू जी के स्वरूप को पुनः अपने घर में स्थापित कर दो। हम भी उन्हीं के सेवक हैं। घर लौटने के पश्चात् उस परिवार के समस्त सदस्य कुराना आश्रम में गए और पूजा आरती कर अत्यन्त श्रद्धा से गाजे-बाजे के साथ, गुरु देव जय जय ..... प्रभू राम लाल जय जय संकीर्तन करते हुए श्री प्रभू जी के स्वरूप को ला कर घर में स्थापित कर दिया। अब नित्य पूजा-आरती कीर्तन करने लगे। इस प्रकार उनका क्लिष्ट संस्कार समाप्त हुआ और श्री प्रभू जी की कृपा से उन पर आनन्द की बहार आई, अस्तु।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आनन्द कन्द श्री प्रभू जी के स्वरूप जिन घरों में विराजमान हैं, वहाँ दुरात्माओं का स्वतः ही पलायन हो जाता है। जिस घर में सदा प्रभू जी की दैनिक आरती होती है, उनके नाम का गुणगान होता है, वहाँ भूत-प्रेत पिशाच नहीं ठहर सकते। श्री प्रभू जी के आलतेज के रहते तमोगुणी आत्माओं का ठहरना सम्भव नहीं है। अतः तुम अपने गुरु मार्ग पर चलते हुए सुख-शान्ति से वास करो..... बार-बार आशीर्वाद।

अभ्यास और वैराग्य

डॉ. कृष्णकान्त शर्मा

महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्र के प्रारम्भ में ही योग का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच चित्त की वृत्तियाँ हैं। अब प्रश्न उठता है कि इन वृत्तियों का निरोध कैसे किया जाये। चित्त की एकाग्र भूमि में ही वृत्तियों का निरोध सम्भव है। अतः महर्षि पतंजलि ने अधिकारिभेद से तीन सोपानों में वृत्तिनिरोध के उपायों का वर्णन प्रस्तुत किया है—(1) अभ्यास और वैराग्य, (2) क्रियायोग, एवं (3) अष्टांगयोग।

भाष्यकार व्यासदेव के अनुसार अभ्यास और वैराग्य समाहितचित्तवाले उत्तम अधिकारियों के लिए है तथा क्रियायोगक एवं अष्टांगयोग व्युत्थितचित्त वालों के लिए है। किन्तु आचार्य विज्ञान भिक्षु ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि मन्द, मध्यम और उत्तम भेद से योग के अधिकारी तीन प्रकार के हैं। ये क्रमशः आरुरुक्षु, युञ्जान एवं योगारूढ़ कहलाते हैं। आरुरुक्षु मन्द अधिकारी के लिए अष्टांगयोग की साधना बताई गई है। युञ्जान मध्यम अधिकारी के लिए क्रियायोग का उपदेश किया गया है और योगारूढ़ उत्तम साधकों के लिए अभ्यास एवं वैराग्य का निरूपण किया गया है। उत्तम साधक वे होते हैं जिन्होंने पूर्व जन्मों में ही योगाभ्यास प्रारम्भ कर योग के यमनियमादि पाँच बहिरंग साधनों को सिद्ध कर लिया है। ऐसे उत्तम साधक को वर्तमान जीवन में पुनः यमनियमादि का अनुष्ठान नहीं करना पड़ता। अतः महर्षि पतंजलि ने ऐसे उत्तम साधकों के लिए योग प्राप्ति के मुख्य उपाय के रूप में अभ्यास और वैराग्य का निरूपण किया है। यहाँ पर इन्हीं दोनों उपायों पर यत्किञ्चित् प्रकाश डाला जा रहा है।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः सूत्र की व्याख्या करते हुए भाष्यकार व्यासदेव ने चित्त की उपमा एक ऐसी नदी से की है जिसकी दो धारायें हैं। एक धारा अन्तर्मुखी है और दूसरी पापकारी। एक मोक्षदायिनी है और दूसरी संसारदायिनी है। एक धारा चित्त–स्थैर्यनिमित्तिका है तो दूसरी चित्तचाञ्चल्यनिमित्तिका। एक धारा अध्यात्मविषयानुरागिनी है तो दूसरी भौतिक विषयानुरागिनी। एक धारा पारमार्थिक सुखोत्पादिनी है तो दूसरी काल्पनिक सुखोत्पादिनी। इस प्रकार चित्तरूपी नदी में दोनों प्रकार की तरंगें उठती हैं और गिरती हैं।

सामान्यजनों के चित्त की कल्याण–वाहिनी धारा बड़ी हल्की और छिन्न–भिन्न रूप की होती है किन्तु उनकी पापवाहिनी धारा सुदृढ़ होती है। इसीलिए योगी को चाहिए कि वह पापवाहिनी धारा को क्षीण करे और कल्याणवाहिनी धारा को ठीक से प्रवाहित करे। चित्त–नदी की पापवाहिनी बहिर्मुखी धारा को अवरुद्ध करने तथा कल्याणवाहिनी अन्तर्मुखी धारा को तीव्र गति से प्रवाहित करने के लिए महर्षि पतंजलि ने अभ्यास और वैराग्य नामक दो उपायों का उपदेश किया है। पहले वैराग्य नामक उपाय के द्वारा अविवेकपूर्ण ऐहिक एवं आमुष्मिक विषयोन्मुखिनी धारा सुखा दी जाती है। अर्थात् वैराग्य नामक उपाय से चित्त की विषयोन्मुखता दूर की जाती है तदनन्तर तत्त्वज्ञान के अभ्यास से विवेकज्ञान वाली कल्याणवाहिनी धारा उद्घाटित की जाती है अर्थात् प्रबलतया प्रवाहित की जाती है। तात्पर्य यह है कि अभ्यास नामक उपाय के द्वारा चित्त को विवेकज्ञान की ओर एकाग्र किया जाता है।

इस प्रकार चित्तवृत्तिनिरोध के लिए अभ्यास और वैराग्य दोनों ही अपेक्षित हैं। श्रीमद्भागवद्गीता में जब अर्जुन ने कहा कि हे कृष्ण यह मन बड़ा ही चंचल है। यह मन प्रमथनशील भी है अर्थात् शरीर को क्षुब्ध और इन्द्रियों को विक्षिप्त कर देता है। यह इतना बलवान एवं दृढ़ है कि इसका निरोध करना वायु की भाँति दुष्कर है। अर्थात् जैसे वायु को रोकना दुष्कर है, मन को रोकना उससे भी कहीं दुष्कर है। ऐसे दुर्निगृहीत मन को एकाग्र करने का उपाय बताते हुए भगवान् कृष्ण ने भी अर्जुन से कहा है कि हे महाबाहो! इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह मन अत्यन्त चंचल है और इसका निग्रह करना सहज नहीं है फिर भी अभ्यास और वैराग्य से इसका निग्रह किया जा सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि यह अभ्यास और वैराग्य क्या है? इस प्रश्न के समाधानार्थ यहाँ अभ्यास और वैराग्य के स्वरूप का निरूपण किया जा रहा है।

अभ्यास—महर्षि पतंजलि ने कहा है कि स्थिति विषयक यत्न का नाम अभ्यास है। अभ्यास को समझने के लिए स्थिति को समझना आवश्यक है। स्थिति की व्याख्या करते हुए व्यासदेव ने कहा है कि वृत्तिशून्य चित्त की प्रशान्तवाहिता अर्थात् निरोध के प्रवाह का नाम स्थिति है। उसी स्थिति के लिए जो प्रयत्न है, वीर्य है या उत्साह है अर्थात् उसी स्थिति के सम्पादन की इच्छा से बार–बार उसके साधनों का अनुष्ठान ही अभ्यास है। जितने उत्साह और वीर्य से कोई साधक यत्न करेगा वह उतनी ही जल्दी अभ्यास में दृढ़ता को प्राप्त कर लेगा। जैसा कि श्रुति भी कहती है—

''नायमात्मा बल हीनेन लभ्यो,

न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।
एतैरूपायैर्यतते यस्तु विद्वान्,
तस्यैव आत्मः विशते ब्रह्मधर्म।।

अभ्यास का मुख्य प्रयोजन चित्त की स्थिरता है। चित्त के स्थिर रहने पर शेष समस्त इन्द्रियाँ स्वतः तदनुगामिनी हो जाती हैं। चित्त की स्थिरता की उत्कृष्ट अवस्था वह अवस्था है जिसमें वृत्त्यन्तरशून्य ध्येयाकारित चित्त की प्रशान्त वाहिनी अवस्था होती है। इस अवस्था में चित्त हर्ष–शोकादि से विचलित नहीं होता, अपितु एकाग्र रहता है। इस प्रशान्तवाहिता का वर्णन प्रस्तुत करते हुए विज्ञानभिक्षु ने महोपनिषद् से एक श्लोक उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है।

"श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च
भुक्त्वा घ्रात्वा शुभाशुभम्।
न हृष्यति ग्लायति च
स शान्त इति कथ्यते।।"

अर्थात् स्तुतिपरक अथवा निन्दापरक वाक्य तथा सुमधुर–गीत अथवा कर्कश शब्द सुनकर, कोमल वस्त्र आदि अथवा खुरदुरे पदार्थ छू कर, मनोहर अथवा जुगुप्सित रूप देखकर, सुस्वादु अथवा अस्वादु अन्न खाकर, सुगन्धित अथवा दुर्गन्धित पदार्थ सूँघकर जो न प्रसन्न होता है न विषण्ण वही शान्त कहलाता है।

अभ्यास को चित्त की स्थिरता के प्रति उपाय कहा गया है, किन्तु यहाँ यह आशंका होती है कि अनादि काल से विद्यमान स्वाभाविक चंचल चित्तवृत्तियों का निरोध अभ्यास के द्वारा कैसे सम्भव है? इसका समाधान यह है कि चित्तवृत्तिनिरोध के लिए साधक का दो–चार दिन का अभ्यास अथवा सप्ताह–मास–पर्व पर्यन्त अन्यमनस्क भाव से किया गया शिथिल अभ्यास चंचल चित्तवृत्तियों को स्थिर करने में सक्षम नहीं हो सकता। किन्तु पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ जन्म–जन्मान्तर तक निरन्तर किया गया अभ्यास सुदृढ़ होकर चित्तवृत्तियों का निरोध करने में समर्थ होता है। अभ्यास के दृढ़ होने पर वह प्रकृति के विपरीत कार्य करवाने में भी सक्षम होता है। विष, जिसके पान से मृत्यु होती है, निरन्तर अभ्यास से ऐसा विष भी अमृत बन गया है। जैसा कि योगविलास में कहा गया है–

"विषाण्यमृततां यान्ति सततभ्यासयोगतः।"

श्रद्धापूर्वक अभ्यास करने से वह अभ्यास दृढ़ एवं अपराजेय होता है, जैसा कि श्रुति कहती है–

"यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति।"

वैराग्य—चित्तवृत्ति निरोध के लिये वैराग्य भी महत्त्वपूर्ण उपाय है। विराग राग का विरोधी है। विषय के प्रति स्वाभाविक विरक्ति को ही वैराग्य कहा जाता है। यह वैराग्य भी दो प्रकार का होता है—अपर वैराग्य और परवैराग्य। योग साधना के प्रारम्भ से लेकर विवेकख्याति पर्यन्त जिस वैराग्य की आवश्यकता और सम्भाव्यमानता होती है उसे अपर वैराग्य कहते हैं। सम्प्रज्ञात समाधि से सिद्ध होने पर प्राप्त होने वाली विवेकख्याति के उपरान्त उस विवेकख्याति या तत्त्वज्ञान के प्रति भी होने वाली विरक्ति को परवैराग्य कहा जाता है। अब इन दोनों वैराग्यों पर विचार प्रस्तुत है।

अपरवैराग्य—इस लोक में सुलभ होने वाले शब्दादि विषय एवं वेद में बताये गए स्वर्गलोकादि विषयों के प्रति विरक्त निस्पृह या उदासीन चित्त की वशीकार संज्ञा होती है। इसी वशीकार संज्ञा का अपरपर्याय अपर-वैराग्य है। जैसाकि सूत्रकार ने कहा है—दृष्टानुश्रविक विषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।।

अपरवैराग्य अर्थात् दृष्टादृष्ट विषयों के प्रति पूर्णरूप से वैराग्य सहसा उत्पन्न नहीं होता। वैराग्य के विषयों को शनैः-शनैः बढ़ाता हुआ योगी वैराग्य को प्रौढ़-प्रौढ़तर-प्रौढ़तम करता है। इस क्रमिक विकास के आधार पर अपर-वैराग्य की चार अवस्थायें कही हैं—यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय और वशीकार।

परवैराग्य—अपर वैराग्य के बाद परवैराग्य सिद्ध होता है। परवैराग्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है—

"तत्परं पुरुषख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्।"

अर्थात् पुरुष ख्याति हो जाने पर साधक के चित्त की जो सत्व गुण के प्रति भी जो वितृष्णा हो जाती है उसी को परवैराग्य कहते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि अपर वैराग्य लौकिक व पारलौकिक विषयों के प्रति वितृष्णा है और पर वैराग्य ज्ञान के प्रति अर्थात् सत्व गुण के प्रति भी वैतृष्णा रूप है। विवेक ख्याति के पराकाष्ठा काल में ज्ञान मात्र के प्रति जो हेयत्व बुद्धि जागृत होती है वही परवैराग्य है। ज्ञान विषयक होने के कारण इसे ज्ञान प्रसाद कहा गया है।

अपर वैराग्य के समय अविद्या की निवृत्ति हो जाने पर परवैराग्य के समय ज्ञानों के प्रति उपेक्षा बुद्धि उत्पन्न होती है। फलतः सम्प्रज्ञातकालीन ध्येयाकार वृत्ति भी निरुद्ध हो जाती है और सर्ववृत्ति निरोध रूप असंप्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है। असंप्रज्ञात की पराकाष्ठा ही कैवल्य और यही अभ्यास-वैराग्य का परम प्रयोजन है।

श्री गुरुदेव और उनका शक्ति-संचार

डॉ. विष्णुदत्त शर्मा (बी. एच. यू.)

भारतवर्ष की इस पुण्यधरा पर ऐसे अनेक सिद्ध सन्तों का अवतरण होता रहा है जिन्होंने अनेक भव-पीड़ित मुमुक्षजनों को इस असार संसार से बाहर निकाल कर उन्हें अपने शक्ति-संचार द्वारा चेतना के राज्य में प्रवेश करने का अधिकार दिया। जड़ता के भाव-लोक से चेतना के अनुपम लोक में प्रवेश पाकर उनका चित्त स्वयं समाहित हो गया और इस प्रकार श्री गुरुदेव के शक्ति संचार को ग्रहण कर वे कृत्य-कृत्य हो गये।

हमारे देश में किसी काल में ऐसी दीक्षा हुआ करती थी जिसमें श्री गुरुदेव योग्य शिष्य की भूतशुद्धि कर, उसके पाप और मल दूर कर, उसमें शक्ति-संचार करके, उसे ज्ञान की ऊँची सीढ़ी पर अवस्थित कर दिया करते थे। श्री गुरुदेव की प्राप्ति सभी को नहीं हुआ करती है, मात्र विरले भाग्यवान् जीवों को वह 'गुरुसत्ता' स्वयं अपनाया करती है। दीक्षा शब्द का अर्थ ही 'ज्ञान का देना और पापों का क्षय करना' है। तंत्रों, योगवासिष्ठ, देवी भागवत, लिंग और शिव-पुराण, आदि में इस तथ्य के अनेक प्रमाण हैं।

विद्युत से भी अधिक बलवती एक शक्ति है। जिसे योगशास्त्र में कुण्डलिनी कहते हैं। यह शक्ति खनिज, वनस्पति एवं पशु-पक्षियों में भी सुषुप्त रूप से कार्य करती है। मनुष्य में यह शक्ति थोड़ी ही मात्रा में जाग्रत है, इसी हेतु मनुष्य योनि अन्य योनियों से श्रेष्ठ है। इस शक्ति को पूर्णतया जाग्रत कर लेने पर मनुष्य निज मन व अहंकार का नाश कर, अनेक सिद्धियों व ऐश्वर्यों का स्वामी होकर जीवात्मा व परमात्मा की एकता को प्राप्त कर निश्चल हो जाता है। सारे योग का आधार यही कुण्डलिनी है। साधन चतुष्टय युक्त पूर्ण पवित्रता में यह स्वयं जग सकती है। इसी के कारण मन्त्रार्चन, पूजादि सिद्धि और फलप्रद होते हैं। श्री सिद्ध-गुरु के शक्ति संचार द्वारा यह महाकुण्डलिनी शक्ति स्वयं ही जाग्रत होकर शिष्य को उसके स्वरूप में अवस्थित होने का सौभाग्य सुलभ कराती है। अतः परमपिता से बिछुड़े हुये अविद्या के अन्धकार से भटकते हुए जीव को फिर से अपने पिता की गोद में बैठा देने वाले सद्गुरु की महिमा अकथनीय है।

भगवान शिव ने श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी को योगदीक्षा प्रदान कर उनमें शक्ति संचार द्वारा उन्हें पूर्णता प्रदान की। परमप्रभु आदिनाथ भगवान शिव की आज्ञा पाकर उन्होंने योग का अनुपम मार्ग संसार को दिखलाया। इतिहास साक्षी है, इस भारत भूमि में ही नहीं अपितु चीन, तिब्बत तथा अन्य पश्चिम दिशा के, देश के लोगों ने भी योगमार्ग को अपनाकर स्वयं को भौतिक एवं पारलौकिक लाभों से कृतार्थ कर लिया। श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी की कृपा से गोरक्षनाथ महाराज, भर्तृहरि इत्यादि अनेक सिद्ध महापुरुषों का आविर्भाव हुआ जिनको शक्ति संचार करने की सामर्थ्य गुरु परम्परा से प्राप्त हुई। चैतन्य महाप्रभु में श्री ईश्वरपुरी ने गया में शक्ति–संचार का पात्र बनकर संसार को अपनी अलौकिक प्रतिभा से हतप्रभ कर दिया था। सुषुम्ना–संचारी महापुरुष अपने योग्य शिष्यों में शक्ति संचार कर उन्हें भी शक्ति–संचार करने की योग्यता प्रदान करते हैं। कहा जाता है कि रामकृष्ण परमहंस की समाधिकाल की दृष्टि या स्पर्श से दूसरे शिष्य में शक्ति संचार होकर उसे समाधि हो जाती थी।

काशी–निवासी एक योगी सन्त के दर्शन का सौभाग्य मुझे यहाँ कुछ वर्ष पूर्व मिला था। प्रथम भेंट में वार्तालाप के दौरान जब श्री महाप्रभु जी का नाम उन्होंने हमसे सुना, तो वे उनके स्मरण से अत्यधिक भावविभोर हो उठे और उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। लगभग एक घण्टे तक वे भाव समाधि में रहे। जब प्रकृतिस्थ हुए तो काफी समय तक मौन रहे। तत्पश्चात् कुछ समय बाद उन्होंने स्पष्ट किया कि उन्होंने श्री महाप्रभु जी से ही ऋषिकेश में शक्ति–पात दीक्षा प्राप्त की थी। श्री महाप्रभु जी का स्मरण करते हुए वे कई बार भाव–विभोर हुए, उनकी वाणी रुक सी जाती थी और आँखों से अश्रु लगभग 3–4 घण्टे तक बहते ही रहे। उन्होंने महाप्रभु जी का जिक्र करते हुए बतलाया कि वे शक्ति संचार के स्वामी थे, उनकी दृष्टि, उनके स्पर्श व उनके चिन्तन से शिष्यों में शक्ति संचार हुआ करता था, जिसके फलस्वरूप कुछ लोग समाधिलाभ करते, कुछ एक प्रेम समुद्र में स्वयं को निमग्न पाते तो कुछ एकों को हठयोग की कठिन मुद्रायें सहज ही सुलभ हो जाती थीं। श्री महाप्रभु जी की अनेक करुण कृपायें मुझे उस दिन उनसे सुनने को मिलीं। मुझे स्मरण है मेरा भी मन उस दिन कुछ समय के लिए उनके चरण कमलों में निमग्न हो गया था। इन सन्त के श्रीमुख से भी मैंने यही सुना कि "गुरु परम्परा द्वारा ही यह शक्ति–संचार करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। गुरु–परम्परा द्वारा प्राप्त शक्ति–संचार से शिष्य को कुछ अनुभव अवश्य होना चाहिये। जब तक शिष्य में गुरु शक्ति संचार न हो तब तक गुरु–शिष्य सम्बन्ध दृढ़ नहीं होता। गुरुदेव के समीप शक्ति संचार के लिए ही जाना पड़ता है, केवल मन्त्र पाने के लिए नहीं। उपदेशकर्त्ता में स्वयं मन्त्र चैतन्य हो चुकना चाहिए तभी शक्ति

संचार किया जा सकता है। मन्त्र चैतन्य और कुण्डलिनी का जागरण दोनों एक ही वस्तु है।" इन संत के कुछ अनुभव, जो उन्हें गुरु-कृपोत्पन्न शक्ति संचार से हुए थे, मुझे सुनने का सौभाग्य मिला था। शक्ति-संचार से हुए अनुभवों का वर्णन हमारे अनेक तंत्र ग्रन्थों, पाशुपत योग और कुछ ऊपर लिखे पुराणों में मिलता है। इन संत के सभी अनुभव उपर्युक्त ग्रन्थों में वर्णित अनुभवों के अनुरूप ही थे।

शक्ति-संचार की महत्ता के बारे में सद्शास्त्रों से जानकर एक ऐसी निष्ठा मन में बन गई है कि हम सभी लोग अपने करुणार्णव श्री गुरुदेव जी का आश्रय प्राप्त कर धन्य हैं। इस कलिकाल में आसन, प्राणयामादि द्वारा सफलता प्राप्त कर लेना कुछ कठिन-सा है परन्तु शक्ति-संचार द्वारा सभी आवश्यक योगांग जैसे आसन मुद्रा प्राणायामादि स्वभावतः आ जाते हैं। इस शक्ति-संचार परम्परा को सिद्धयोग कहते हैं। कुलार्णव तन्त्र में इसे वेध दीक्षा कहा है। सिद्ध योग के विशेष उपादान गुरु-भक्ति, श्रद्धा और आलस्य रहित होकर जप करना ही है। सब मन्त्रों और योगक्रियाओं में गुरु भक्ति का बड़ा महात्म्य है। गुरु शक्तिशाली और शिष्य भी श्रद्धालु एवं भक्तिमान होना चाहिए। पूर्ण श्रद्धा और भक्ति हुए बिना गुरु की शक्ति शिष्य में नहीं पहुँच पाती।

❀❁❀❁❀❁❀

मिल सके तो.....

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

मिल सके तो अश्रु धारा का किनारा खोजता हूँ।
नाव जीवन की बहाऊँ, किस तरह सूखी धरा पर।
मैं किसी के लोचनों में, अश्रु धारा खोजता हूँ।।
मिल सके तो अश्रु धारा का किनारा खोजता हूँ।

सूर्य से जल जायगा दिल, चन्द्र से उन्मत्त होगा।
इसलिए मन के गगन में, एक तारा खोजता हूँ।।
मिल सके तो अश्रु धारा का किनारा खोजता हूँ।

पास अपने जग बुलाकर, दूर ही करता रहा है।
जो बुलाकर दे न ठोकर, वह इशारा खोजता हूँ।।
मिल सके तो अश्रु धारा का किनारा खोजता हूँ।

नील नयनों के गगन में, खो गया पंछी हृदय का।
मैं किसी के लोचनों में, अब सहारा खोजता हूँ।।
मिल सके तो अश्रु धारा का सहारा खोजता हूँ।

आइए हम समझें–

अपने को और अपने शरीर को

श्री दर्शनानन्द

(गतांक से आगे)

मन का स्वरूप, शक्ति और सामर्थ्य

इस शीर्षक के अन्तर्गत हमने गत अंक में आन्तर इन्द्रिय मन और पुरुष के प्रारम्भिक स्वरूप को समझाने का प्रयास किया था। हमारी स्थूल देह के अन्तर्गत जो सूक्ष्म शरीर कार्यरत रहता है मन उसका एक प्रमुख उपकरण कहा जा सकता है। मन में सत्व रज तम तीनों ही वर्तमान रहते हैं पर इनमें रजोगुण प्रधान रहता है अथवा यों समझिए कि मन के निर्माण में रजोगुण का अधिकांश रहता है। इस रजोगुण के अधिकांश के कारण ही यह सदा चंचल बना रहता है। चंचलता इसका अपना गुणधर्म होता है। चूँकि आत्मा (पुरुष) की इच्छा पूर्ति के लिए प्रत्येक इन्द्रिय के साथ लगकर विषय–भूमि तक पहुँचाने में मन को ही मुख्य रूप से अपना कर्त्तव्य पालन करना पड़ता है–यदि रजोगुण प्रधान होने के कारण इसमें चंचलता का गुण न होता तो यह अपने इस दायित्व का निर्वाह उचित रूपेण आवश्यकतानुसार कर ही न पाता। इस दृष्टि से चंचलता मन का दोष नहीं वरन् इसका स्वाभाविक गुण ही कहा जा सकता है। अलबत्ता, जब हम ध्यान योग का आश्रय लेकर समाधि लाभ लेना चाहते हैं तब इसकी चंचलता बाधक बनकर साधक को लक्ष्य तक नहीं पहुँचने देती। ध्यान योग द्वारा समाधि लाभ तभी हो सकता है जबकि मन को चंचलता से हटाकर उसे स्थिरता की ओर मोड़ लिया जाये। मन के स्वाभाविक गुण चंचलता से अलग करके कैसे उसमें स्थिरता लाई जाये, यह प्रश्न सामने है।

निस्सन्देह यह प्रश्न विचारणीय है। अर्जुन ने यही प्रश्न भगवान कृष्ण के सन्मुख कुरुक्षेत्र के युद्ध में उस समय ला उपस्थित किया था–जब वे उसे स्थितप्रज्ञ बनने का उपदेश दे रहे थे। भगवान ने उसकी असमंजस को स्वीकार करते हुए मन को दुर्निग्रही तो बताया लेकिन साथ ही साथ उन्होंने यह भी बता दिया कि 'अभ्यास और वैराग्य' का आश्रय लेकर मन की चंचलता और अस्थिरता पर काबू पाया जा सकता है। प्रकारान्तर से भगवान पतंजलि ने भी यही उपदेश योग–दर्शन के प्रारम्भिक सूत्र में योगश्चित्त वृत्ति निरोधः सूत्र

द्वारा दिया है। उनका यह कथन सत्य के अति निकट है कि योग–साधना की प्रथम सीढ़ी–चित्त की वृत्तियों के निरोध कर लेने के उपरान्त ही आगे बढ़ने का मार्ग प्रस्तुत करती है। इसी योगदर्शन के प्रथमपाद के तीसरे सूत्र में–

'तदादृष्टु स्वरूपेऽवस्थानः' का उल्लेख करके यह भी बता दिया गया है कि चित्त की वृत्तियों के निरोध सध जाने के बाद ही साधक अपने निज स्वरूप में स्थित हो पाता है। दूसरे शब्दों में निज स्वरूप में स्थित हो जाने का अर्थ ही होता है कैवल्य की प्राप्ति हो जाना।

मन की चंचलता मिटाकर उसे स्थिर बनाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने अभ्यास और वैराग्य की साधना करने का जो उपदेश अर्जुन को दिया है वही यथावत् पतंजलि भगवान ने समाधि पाद के सूत्र संख्या 12 में योग साधकों को दिया है। यथा :

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

अगले सूत्र सं. 13 में अभ्यास की परिभाषा करते हुए महामुनि पतंजलि ने कहा है कि ऐसा करने के लिए जो यत्न किया जाता है वही अभ्यास कहलाता है।

यह अभ्यास अथवा इसका प्रयत्न जब लगातार नियमपूर्वक दृढ़ता और श्रद्धापूर्वक किया जाता है तो निश्चित रूपेण सफलता प्राप्त करने वाला बन जाता है। मन के स्थिर या वश में हो जाने पर उसकी विषयोन्मुखी वृत्तियाँ अन्तरमुखी बनकर इन्द्रियों को, जिन्हें अत्यन्त बलशाली बताया गया है विषयों से उदासीन बन जाती हैं। इनका विषयों की ओर से उदासीन बनकर सर्वथा तृष्णा रहित हो जाना ही वैराग्य कहलाता है। दूसरे प्रकार में यों भी समझिए कि प्रकृतिजन्य विषयों में राग का न होना ही वैराग्य कहा जा सकता है।

दुर्निग्रही, मन, प्रकृति–जन्य विषय–भूमि से हटकर तभी एकाग्र होगा, जब उसे अन्तर्मुखी बनाकर परब्रह्म के अनिर्वचनीय आनन्द में रत कर दिया जाये। नाम–स्मरण और नाम–जप का उद्देश्य भी मन को ब्रह्मानन्द में डुबो देना ही होता है। ऐसा हो जाने पर ही भगवान वेद के शब्दों में मन–ज्योतियाँ तज्ज्योतिरेक का रूप धारण कर लेता है। संकल्प–शक्ति की सार्थकता भी ऐसे ज्योतिष्मान मन पर ही आधारित रहती है। अतः मन को शक्ति–सम्पन्न बनाने के लिए उसे शिव संकल्पमय बना डालना चाहिए। ऐसा मन बनाने के लिए वेद के निम्नलिखित पाँच मन्त्र जिन्हें अर्थ सहित हम यहाँ नीचे दे रहे हैं, हमारे नित्य प्रति के स्वाध्याय और मनन के आवश्यक अंग बन जाने चाहिए। इनके नित्य जप से आप न केवल मन को शिव संकल्पमय बना सकेंगे, अपितु उसकी अपरमित शक्ति का भी परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

यजुर्वेद के पाद में छः मन्त्र उनके अर्थ सहित नीचे दिए जा रहे हैं।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थात्—हे प्रभो! मेरा दिव्य शक्ति–वाला जो मन जागते हुए का व सोते हुए का दूर दूर तक जाता है—चिन्तन करता है, जो सभी ज्ञान–साधक इन्द्रियों का प्रधान ज्योति प्रकाशक है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारवाला होवे।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थात्—हे प्रभो! जिस मन की सहायता से मनस्वी धीर पुरुष विशेष ज्ञानपूर्वक किये जाने वाले यज्ञों में कर्त्तव्य–करने योग्य कर्मों को करते हैं, जो शरीरों के भीतर अपूर्व पूजनीय रूप में विद्यमान है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला होवे।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च।
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थात्—हे प्रभो! जो मेरा मन ज्ञान का साधन और चेतना का आधार है, जो शरीरों में छिपा हुआ, मरणधर्म–रहित, ज्ञान का प्रकाशक है, जिसकी सहायता के बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला होवे।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि–
ग्रहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थात्—हे प्रभो! जिस मन से अपनी चिन्तन शक्ति से भूत वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों को पकड़ रखा है, जो सभी कालों के कार्यों का चिन्तन करने का सामर्थ्य रखता है, और जिस मन की शक्ति से सात होताओं द्वारा किये जाने वाले शुभ कर्म का अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ किए जाते हैं, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला होवे।

यस्मिन्नृचः सामयजूँषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविमाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थात्–हे प्रभो! जिस मन में रथनाभि में आरों के समान सब प्रकार का ज्ञान–विज्ञान ठहरा हुआ है, जिसमें प्राणियों की चिन्तन–शक्ति वस्त्र में सूत के समान ओत–प्रोत है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारवाला होवे।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।

अर्थात्–हे प्रभो! जैसे उत्तम कुशल सारथि घोड़ों को लगामों की सहायता से इच्छानुसार गन्तव्य स्थानों को प्राप्त करता है, वैसे ही मन अपनी दुर्दमनीय शक्तियों से बलवान मनुष्यों को भी इधर–उधर भटकाता रहता है। जो चेतना–स्थान में स्थित है, चंचल और शीघ्रगामी व बलवान है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शिव संकल्प वाला होवे।

इन सभी उपरोक्त मन्त्रों का सार भी यही है कि मन रूपी सर्वोत्तम ऐसा एक ज्योतिष्मान उपकरण आपके पास है जिसे शिव संकल्प यानी सद्भावनाओं और सद्कामनाओं के रंग में डुबोकर आप जीवन के अभीष्ट फल की उपलब्धि कर सकते हैं। मन, इन्द्रिय ही एक ऐसी इन्द्रिय है जो शेष सभी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को सहयोग देकर अथवा उनसे निकटतम सम्पर्क स्थापित करके उन्हें कार्योन्मुख बनाया करती हैं। मन इन्द्रिय की एक विशेषता यह भी है कि एक समय में एक ही विषय को ग्रहण किया करती हैं। एक साथ दो विषयों को ग्रहण करना इसके बस की बात नहीं रहती। जब यह शिव–संकल्पों या सद्भावनाओं का मनन अथवा चिन्तन करता रहेगा तो दुर्भावनायें और बुरे संकल्प इसके पास पहुँच ही नहीं पायेंगे। इस दृष्टि से वेद के उपरोक्त मन्त्रों का स्मरण, जप, मनन और चिन्तन चरित्र को उज्जवल बनाने वाले व्यक्तियों तथा साधकों को सदैव करते रहना ही श्रेयस्कर रह सकता है। इसीलिए इन वैदिक मंत्रों को नित्य कर्मों की शृंखला में सम्मिलित करना उचित समझकर आचार्यों ने इनके नित्य पाठ की सुव्यवस्था कर डाली है।

शिव–संकल्पों से समाहित मन ही स्थितप्रज्ञ बनकर शाश्वत शांति और समाधि के अनिर्वचनीय आनन्द को प्राप्त कराने का कारण बना करता है। ऐसे ही मन को वशीकार संज्ञक मन भी कहा जाता है। मन के व्यापक प्रभाव व उसकी शक्तिमत्ता के कारण ही सूक्ष्म शरीर के एक आयतन को, मनोमय आयतन का नाम दिया गया है क्योंकि मनः शक्ति ही इस आयतन में प्रमुख रूपेण गतिशील रहा करती है।

मन का निर्माण और पोषण

मन सदा शिव संकल्प और सद्भावनाओं का आगार बना रहे इसके लिए न केवल शिवसंकल्प मन्त्रों का जप और पठन–पाठन आवश्यक है वरन् यह भी जरूरी है कि हम मन

को सत्वगुण सम्पन्न या सद्भावनाओं से संयुक्त बनाये रखने के लिए अपने आहार को भी सात्विक बनायें। आहार और मन का घना सम्बन्ध सदैव बना रहता है। हमारे मन का निर्माण और पोषण हमारे प्रतिदिन के आहार के सूक्ष्म अंग से ही होता है। इसीलिए यह जनश्रुति है कि जैसा खाये अन्न वैसा बने मन्न। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने भी श्रीमद्भगवद् गीता में शुद्ध सात्विक मन बनाने के लिए शुद्ध सात्विक आहार पर बड़ा बल दिया है। उनका आहार परमित और नियमित तो होना ही चाहिए—सात्विक उत्तेजना रहित और हृदय को बल देने वाला तथा मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाला भी होना चाहिए। साथ ही यह भी जरूरी है कि वह शुद्ध कमाई और स्वयं के श्रम द्वारा ही उपार्जित हो। अन्याय, असत्य और दूसरों के शोषण पर आधारित कमायी का आहार सात्विक मन बनाने में समर्थ नहीं हो पाता है।

आशा है अपने मन के निर्माण में साधक आहार सम्बन्धी इस शास्त्रीय नियम की उपेक्षा नहीं करेंगे।

भगवान श्रीकृष्ण का आदेश और परामर्श आहार के सम्बन्ध में इस प्रकार है—

आयुः सत्वलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्यो: स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहराः सात्विकप्रियाः

—गीता 17/8

अर्थात्—आयु, बल, बुद्धि, आरोग्यता सुख और प्रीति इन सबको बढ़ाने वाला तथा रस्यारस युक्त, स्निग्ध, चिकने स्थिर शरीर में सार रूप से बहुत काल तक रहने वाले और हृदय को प्रिय लगने वाले ऐसे आहार सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं। इसके प्रतिकूल

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदा।।

—गीता 17/9

अर्थात्—कड़ुवे, खट्टे लक्षणयुक्त अति उष्ण, तीक्ष्ण, रूखे और दाहकारक एवं दुःख चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ, राजस पुरुष को प्रिय होते हैं। —क्रमशः

प्राणायाम का तन तथा मन पर प्रभाव

श्री गौतम श्रीमाली

प्राणायाम शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, प्राण तथा आयाम। प्राण शब्द से सामान्यतया प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान इन पंच–प्राणों को लिया जाता है तथा आयाम शब्द का शाब्दिक अर्थ है, विस्तार। अर्थात् प्राणायाम शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ पंच–प्राणों का विस्तार अथवा उनका सुचारु प्रयोग। यह तो सर्व विदित है कि पंच–प्राणों के समुचित रीति से कार्य करने से शरीर में बल, बुद्धि, तेज तथा आरोग्य का संचार होता है। इन पंच–प्राणों को एकीकृत करके मात्र प्राण को ही प्रधान मान लिया गया है तथा प्राण कहने से अन्य चारों को ग्रहण भी मान लिया गया है।

इन पाँचों प्राणों का स्थान तथा कार्य भी शरीर में निश्चित है। प्राण नासिका से हृदय तक व्याप्त रहता है तथा हृदय के क्षेत्र की व्यवस्था करता है, जैसे खून की सफाई, श्वास आदि। अपान नाभि से लेकर पादतल तक रहता है तथा मल–विसर्जन आदि का कार्य सम्भालता है। समान हृदय से लेकर नाभि–पर्यन्त रहता है और भोजन का पाचन तथा शक्ति प्रेषण करता है। व्यान पूरे शरीर में व्यापक रहता है और सब अंगों का संचालन करता है। उदान नासिका से सिर तक व्याप्त रहता है और शरीर को ऊपर उठाये रखने का कार्य करता है। इन सब में प्राण श्रेष्ठ है। यद्यपि ये पाँचों प्राण अलग–अलग न होकर एक ही हैं, किन्तु इनके स्थान तथा कार्य के अनुसार ही इन्हें पाँच भागों में बाँटा गया है तथा अलग–अलग नामों से पुकारा गया है।

इन पंच प्राणों के सहयोग से शरीर में एक शक्ति का उदय होता है जिसे जीवनी–शक्ति के नाम से जाना जाता है। यह जीवनीशक्ति ही शरीर में रोग–प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करती है तथा शरीर की बीमारियों, ऋतु परिवर्तन से होने वाले विकारों तथा अन्य घातक तत्वों से रक्षा करती है। यही कारण है कि शरीर के रुग्ण हो जाने पर औषधि तभी तक कार्य करती है जब तक जीवनीशक्ति सक्रिय रहती है। उसके क्षीण हो जाने पर औषधि भी अपना प्रभाव शरीर पर नहीं जमा पाती, फलतः व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। यही शक्ति शरीर में बल, बुद्धि तेज तथा आरोग्य को उत्पन्न करती है। यह जीवनीशक्ति ही शरीर का

सर्वस्व है।

पंचप्राणों के इस वर्णन से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि प्राणायाम से इन पर अलग–अलग अधिकार किया जाता है। वस्तुत: इन सब पर अधिकार करने के लिये शरीर में एक ऐसा केन्द्र है जो इन सब पर नियन्त्रण करता है। महर्षि पतंजलि ने उस एक केन्द्र का वर्णन करने के लिये ही प्राणायाम शब्द को एक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयोग किया है। उनके अनुसार–'श्वास–प्रश्वास की गति का अवरोध ही प्राणायाम है।' अर्थात्–सामान्य भाषा में इसे कहें तो 'श्वास–प्रश्वास को रोक देना ही प्राणायाम है।' इससे यह सिद्ध हो गया कि श्वास–प्रश्वास एक ऐसा केन्द्र है जिसके अवरुद्ध हो जाने से ये पंचप्राण अत्यधिक सक्रिय हो उठते हैं और जीवनीशक्ति प्रबल होकर अपना कार्य तीव्र–गति से करने लगती है।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि जब हम श्वास लेते हैं तो शरीर में आक्सीजन प्रवेश करती है और जब श्वास छोड़ते हैं तो कार्बन डाई ऑक्साइड बाहर निकलती है। इससे यह सिद्ध होता है कि ऑक्सीजन फेफड़े में पहुँचते ही कार्बन–डाई–ऑक्साइड में बदल जाती है। इससे यह भी ज्ञात हो गया कि जब श्वास रुक जाती है तो फेफड़े में कार्बन–डाई–ऑक्साइड ही रुकी रहती है। अब यहाँ यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि ऑक्सीजन यदि रुके तो उससे शक्ति मिलती है, यह तो समझ में आता है, किन्तु जब कार्बन–डाई–ऑक्साइड को अन्दर रोक दें तो उससे शक्ति किस प्रकार मिलेगी। वस्तुत: जब श्वास रुक जाती है तो कार्बन–डाई–ऑक्साइड ही शरीर के अन्य प्राणों में हलचल उत्पन्न कर देती है जिससे अन्य प्राण सक्रिय हो जाते हैं।

श्वास के रुक जाने पर दूसरा परिवर्तन यह होता है कि प्राण केन्द्रीभूत हो जाते हैं अत: उनका प्रयोग किसी एक अंग को अत्यधिक बलवान बनाने के काम आता है। जैसे कोई भारी चीज उठाते समय श्वास अपने आप अन्दर रुक जाती है और एक हाथ में अत्यधिक शक्ति आ जाती है। यह शक्ति जितनी क्षमता रखती है उतनी मात्रा में हम भार उठा सकते हैं। इस क्षमता में वृद्धि भी की जा सकती है जो अभ्यास पर निर्भर होती है।

शरीर में तीसरा परिवर्तन यह होता है कि जीवनी–शक्ति प्रबल हो जाती है और वह सारे शरीर में व्याप्त होकर उसे अत्यन्त बलवान बनाने का कार्य शुरू कर देती है।

अब तक यह स्पष्ट हो चुका है कि प्राण के रुक जाने के पश्चात् ही अन्दर का कार्य प्रारम्भ होता है। जब तक श्वास–प्रश्वास चलता रहता है, तब तक शरीर में सामान्य क्रियाएँ ही होती रहती हैं जो कि शरीर के लिए आवश्यक हैं। प्राणायाम से शरीर के अंगों पर क्या

प्रभाव पड़ता है। अब हम उस पर विचार करेंगे।

तन पर प्रभाव

फेफड़े में सांस रुक जाने से सबसे पहला प्रभाव फेफड़े पर पड़ता है, इससे फेफड़े के छोटे-छोटे छेद भी सक्रिय हो उठते हैं। उनमें श्वास भर जाती है। सामान्यतया ये छिद्र बन्द रहते हैं, क्योंकि फेफड़े का ऊपरी हिस्सा ही श्वास-प्रश्वास के समय काम करता है। प्राणायाम के समय पूरा फेफड़ा कार्यरत हो जाता है, जिससे उसके छिद्रों में वायु भर जाने से उसके दोष दूर हो जाते हैं और वह बलवान हो जाता है।

दूसरा प्रभाव हृदय पर पड़ता है। हृदय की गति उस समय क्षीण हो जाती है, उसे थोड़ी देर के लिए विश्राम मिल जाता है। रक्त के शोधन तथा परिभ्रमण की क्रिया भी तीव्र हो जाती है, जिससे नस-नाड़ियों का कचड़ा दूर होकर शुद्ध रक्त शरीर में प्रवाहित होता है।

तीसरा प्रभाव अन्य प्राणों पर पड़ता है, जिससे उनसे सम्बन्धित अंग प्रभावित होते हैं और वे सुचारु रूप से कार्य करने लगते हैं। जैसे-पाचन-तंत्र, मलविसर्जन तंत्र आदि।

संक्षेप में यदि कहें तो प्राणायाम का प्रभाव शरीर के विभिन्न अंगों पर तो पड़ता ही है। साथ ही पंच-प्राणों पर भी पड़ता है, जिससे उनका कार्य ठीक हो जाता है और साथ ही जीवनी-शक्ति प्रबल हो उठती है, जिससे शरीर पूर्ण स्वस्थ तथा शक्तिशाली हो जाता है। यही कारण है कि प्राणायाम करने से मनुष्य दीर्घजीवी हो जाता है।

मन पर प्रभाव

प्राणों के केन्द्रित हो जाने से उनमें एक वेग आ जाता है तथा वे किसी एक अंग को प्रभावित करने की क्षमता रखने लगते हैं, इससे मस्तिष्क पर भी प्रभाव पड़ता है। प्राणों की सारी शक्ति जब मस्तिष्क में एकत्र हो जाती है तो वह बलवान हो जाता है। उसकी चंचलता नष्ट हो जाती है। उसमें एकाग्रता आ जाती है तथा राग-द्वेष आदि का कूड़ा-कचड़ा जलकर उसकी जगह परम सात्विकता भर जाती है, जिससे मन शुद्ध विचारों वाला हो जाता है। इससे अज्ञानता का पर्दा नष्ट होकर ज्ञान का प्रकाश प्रदीप्त होता है। वस्तुतः एकाग्रता आ जाने से ही मन के समस्त दोष दूर होने लगते हैं। यही एकाग्रता समाधि में सहायक होती है।

प्राणायाम के प्रकार

यद्यपि प्राणायामों के प्रकारों की संख्या बहुत अधिक है जो कि हमें योग के विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध होती है, किन्तु ये सबकी सब मात्र तीन क्रियाओं पर ही आधारित

हैं–रेचक, पूरक तथा कुम्भक। रेचक का तात्पर्य श्वास को बाहर निकालना। पूरक का तात्पर्य अन्दर लेना तथा कुम्भक का तात्पर्य है रोकना। प्राणों को रोकने की जो क्रिया है वह दो प्रकार की है–एक तो प्राणों को बाहर फेंककर बाहर ही रोक देना तथा दूसरी क्रिया है श्वास अन्दर लेकर उसे अन्दर रोक लेना। ये क्रियाएँ बहुत कठिन नहीं हैं; इन्हें थोड़े से अभ्यास से साधा जा सकता है किन्तु किसी से सुनकर अथवा पुस्तक में पढ़कर या अपने मनमाने ढंग से प्राणायाम की क्रियायें कभी नहीं करनी चाहिए। यह एक क्रियात्मक पद्धति है, जो किसी विशेषज्ञ से ही सीखनी चाहिए। यह क्रिया ऐसी है जो लाभ तो पहुँचाती है, किन्तु भूल हो जाने पर असाध्य रोग भी उत्पन्न करती है जो डॉक्टरों से भी दूर नहीं होते।

यह तो प्रत्यक्ष है कि श्वांस के अन्दर रुक जाने से शरीर के अंगों में शक्ति आती है, किन्तु उससे मन की चंचलता नहीं रुकती, उसके लिए महर्षि पतंजलि ने रेचक प्राणायाम बताया है। रेचक प्राणायाम से मस्तिष्क के तनावयुक्त तन्तु शिथिल हो जाते हैं जिससे विश्राम भी मिलता है, मस्तिष्क ठण्डा रहता है और उसकी चंचलता भी नष्ट हो जाती है। वह इधर–उधर भागता नहीं। इससे कामाग्नि भी शिथिल पड़ जाती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि रेचक प्राणायाम से मन तथा मस्तिष्क के समस्त दोष दूर हो जाते हैं तथा वह चंचलता एवं विषय–लोलुपता का त्यागकर एकाग्र बन जाता है और समाधि की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

आज के इस तनाव भरे वातावरण में जहाँ मनुष्य प्रतिपल अपनी जीविका तथा जीने के लिए संघर्ष करता रहता है, वहाँ निराशा, क्रोध, तनाव, चिन्ता, रोग, दुःख तथा अशान्ति उसके सामने मुँह बाये खड़े रहते हैं और उसके जीने का उत्साह भंग करते रहते हैं। इससे मनुष्य यही समझने लगता है कि जीवन एक दुःख का सागर है, जिसके पार जाना असंभव है। वह एक भारयुक्त जीवन जीता है। उसके जीवन में कभी प्रसन्नता, बहार और स्वतन्त्रता नहीं आती। यदि हर व्यक्ति मात्र आधा घंटा प्राणायाम के लिए समर्पित कर दे तो वह अपने इन शत्रुओं से बच सकता है और दीर्घ–जीवी बन कर आनन्द, सुख तथा आरोग्य का लाभ उठा सकता है।

प्राणायाम के व्यायाम की भी समस्या हल हो जाती है। प्राणायाम स्वयं में एक बहुत बड़ा व्यायाम है अतः अलग से व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। व्यायाम करने से जो लाभ शरीर को मिलता है, उससे कहीं अधिक लाभ प्राणायाम से मिलता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि प्राणायाम का प्रभाव तन तथा मन दोनों पर पड़ता है, जबकि व्यायाम का प्रभाव मात्र तन पर पड़ता है। मन उससे अछूता रह जाता है। प्राणायाम को तप भी कहा गया

है। इसका तात्पर्य यह है कि तप करने में शरीर तथा मन को संयमित करने के लिए जो दुःख उठाना पड़ता है, वही कष्ट प्राणायाम को साधने में भी होता है, क्योंकि इस क्रिया के करने में धैर्य, परिश्रम, संयम, नियमितता तथा श्रद्धा की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए यह समस्त तपों में श्रेष्ठ है। समस्त व्यायामों में श्रेष्ठ है तथा हजारों कर्म-काण्डों से भी श्रेष्ठ है। इसका आधे घंटे का अभ्यास तन तथा मन के समस्त पापों का विनाश करके प्रसन्नता तथा सुख प्रदान करता है। योगपथ के पथिक के लिए प्राणायाम से बढ़कर कोई क्रिया नहीं है। जो उसे शरीर से ऊपर उठाकर आत्मा के लोक तक पहुँचा दे तथा उसे शाश्वत शान्ति, आनन्द तथा सुख प्रदान कर सके।

❀❀❀❀❀❀❀

घनाक्षरी

आपको प्रणाम है, प्रणाम है

श्री रामप्रकाश 'अनुरागी'

श्री गणेश गौरी सुत गणपति गजानन,
विघ्ननि निवारिबो तो आपको ही काम है।
ध्यान ही धरें ते जाके मंगल ही मंगल होय,
ऐसो तो प्रथम पूज्य आपको ही नाम है।
वक्रतुण्ड महाकाय शिव के सपूत आप,
आपकी ही गोद ऋद्धि-सिद्धियों का धाम है।
एक वन्त दयावंत ज्ञानी वरदानी देव,
वन्दनीय आपको प्रणाम है, प्रणाम है।

गीत–

अब तो हमें उबारो

श्री रामप्रकाश 'अनुरागी'

प्रभु जी!
अब तो हमें उबारो।

जो भर शेष बचे, सब डूबे,
साधे हुए साँस को ऊबे,
सारी शक्ति लगा दी फिर भी,
विफल हुए सारे मंसूबे।
नंगे पाँव पधारो,
प्रभु जी!
अब तो हमें उबारो।
बहुत सरोवर का जल गहरा,
बहता हुआ नहीं है ठहरा,
सब चिंघाड़े व्यर्थ हो गईं,
लगता सारा जग है बहरा।
कृपा–सिन्धु अवतारो,
प्रभु जी!
अब तो हमें उबारो।
ग्रह से ग्राही ग्रसन प्रबल है,
एक आपका ही सम्बल है,
एकमात्र औषधि रज ही है,
शरणागति ही अन्तिम हल है।
सकल अशुभ संहारो,
प्रभु जी!
अब तो हमें उबारो।

निष्क्रियता पाप है

यदि हम पूर्वजों के गौरवमय इतिहास को दोहराना चाहते हैं और सुखपूर्वक जीवित रहने का अपना जन्म–सिद्ध अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं तो नब्बे करोड़ भारतीयों तक यह मन्त्र पहुँचाना होगा कि निष्क्रियता से बढ़कर कोई पाप नहीं है। आज तो किसी न किसी रूप में निष्क्रियता ही धर्म का रूप धारण किये है। जो जितना पराश्रित और निकम्मा रहे, उसे उतना ही अच्छा और धर्मात्मा माना जाता है। आज देश को कर्मयोग की आवश्यकता है। कर्मयोग का व्यावहारिक अर्थ है कर्म करने की ओर प्रवृत्ति। और वह कर्म भी उच्च भावना से करने की आदत। हम जानते हैं प्रत्येक भारतीय सच्चा कर्मयोगी बनने के लिए यह जीवनसूत्र सदा अपने सामने रखे कि निष्क्रियता पाप है। आज तो हम लोक से परलोक तक, जीवन से मरण तक ही नहीं मृत्यु के बाद तक की तथा मुक्ति से भी लौटने या न लौटने की केवल चर्चा ही करते हैं, यह सब हमारी निष्क्रियता के विविध रूप हैं।

–धर्मदेव शास्त्री

श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम

आचार्यजी के दिसम्बर माह के योग प्रचार कार्यक्रम

1. 4 से 6 दिसम्बर– दतिया
पता श्री चन्दन सिंह गुर्जर की कोठी,
आवास–विकास कॉलोनी
बस स्टैण्ड के सामने, दतिया (म. प्र.)

2. 7 से 8 दिसम्बर– ग्वालियर में
पता प्रदीप त्रिवेदी
लक्ष्मी परिसर, पुष्कर कॉलोनी मन्दिर के पीछे
(धर्मवीर पेट्रोल पम्प के सामने पुष्कर कॉलोनी, ग्वालियर)
फोन–9893397136
9 दिसम्बर को मुरैना निवास
योग प्रचार मण्डल–मुरैना के सौजन्य से

3. 13 दिसम्बर से 15 दिसम्बर 2019
ठक्कर बापा इंटर कॉलेज, कालपी जि. जालौन (उ. प्र.)

4. 28 दिसम्बर 2019 से 1 जनवरी, 2020
योगाश्रम समाधि स्थल नृसिंह कॉलोनी
गंगापुर सिटी–संवाई माधोपुर (राज.)
फोन–9929981200

श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम में गुफा मन्दिर एवं सत्संग भवन का निर्माण कार्य अभी चल रहा है। गुरु भक्तों के ही आर्थिक सहयोग से बहुत कार्य हो चुका है किन्तु अब भी कार्य शेष है जिसे श्री राम–नवमी महोत्सव से पूर्व पूरा करना है।

अतः सहयोग अपेक्षित है। सीधे बैंक खाते में जमा कर सकते हैं।
विवरण निम्न है–

दासलाल ब्रह्मचारी, कृष्ण दत्त शर्मा व विनोद कुमार शर्मा
A/C No.—0371101034337
I.F.S.C.—CNRB0000371
केनरा बैंक, एत्मादपुर

योग-आसन

जानुशिरासन

यह आसन महामुद्रा की प्रतिकृति है। महामुद्रा में ठोड़ी छाती मे लगा कर जालन्धर बन्ध साथ में लगाया जाता है, और साथ में प्राणायाम की भी विधि महामुद्रा के साथ-साथ है, महामुद्रा बहुत ही लाभकारी मुद्रा है, किन्तु क्योंकि उसका वर्णन सभी योगाचार्यो ने मुद्राओं में किया जाता है। अतः उसका वर्णन पूर्ण विधि से मुद्राओं में ही किया जायेगा।

विधि- सम सूत्रता से बैठ जाइये। सीधे बैठकर अपने एक पैर को अपनी जंघा के साथ सटा कर उसकी एड़ी योनिस्थान लिंग नाल के नीचे लगाये रखिये, दूसरे पैर को सामने की ओर लम्बा फैलाकर उस पैर का अँगूठा या सम्भव हो सके तो पूरा पंजा ही पकड़ लीजिये, फैला हुआ पैर जमीन के साथ बिल्कुल सटा रहे, इसके बाद पैर के पंजे को ऊपर की ओर तनाव के साथ खींचते हुए अपना मस्तक घुटने पर लगा दें। इसी प्रकार इस पैर को बदल कर पहले पैर की तरह जंघा पर जमाकर व दूसरे पैर को फैलाकर उसके भी अँगूठे या पंजे को पकड़ कर तनाव के साथ ऊपर की ओर खींचते हुए अपने मस्तक को घुटने पर लगा दें। इसी प्रकार इस पैर को बदल कर पहले पैर की तरह जंघा पर जमाकर व दूसरे पैर को फैलाकर उसके भी अँगूठे या पंजे को पकड़ कर तनाव के साथ ऊपर की ओर खींचते हुए अपने मस्तक को घुटने पर लगा दें, इसी का नाम जानुशिरासन है, दोनों पैरों को बदल-बदल कर करना चाहिए, जितना पहले पैर से किया हो उतना ही दूसरे पैर से भी जरूर करें तभी आसन पूर्ण होगा।

करने का समय- इस आसन के करने में हर व्यक्ति को पहले-पहले कुछ कठिनता होती है। किन्तु अभ्यास से धीरे-धीरे अवश्य ही बन जायेगा। प्रथमाभ्यास में इस आसन को 15 या 20 सैकेन्ड से शुरू करें व प्रतिदिन 4 या 5 सैकन्ड बढ़ाते हुए 2 मिनट तक बढ़ा ले तो उत्तम रहेगा। शरीर के बलावल को देखकर शनैः शनैः और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है।

लाभ- शरीर में दृढ़ता देता है। वात रोग नाशक है, यकृत एवं प्लीहा की बीमारियों को पूरा-पूरा लाभ पहुँचाता है। आँतों को सबल बनाता है। कोष्ठबद्धता दूर होकर जठराग्नि बढ़ती है, भूख खूब लगती है। यकृत पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ने पर रक्त शुद्ध होता है। श्वास में लाभप्रद है। वीर्य रक्षा के लिए श्रेयस्कर एवं स्तम्भक है।

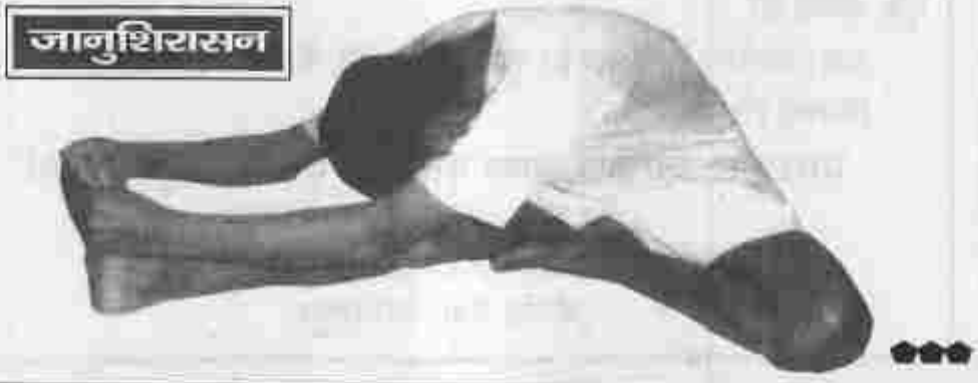

ज्ञानी के लिए प्रारब्ध नहीं रह जाता

हे महामते! निरन्तर प्रयत्न करके आत्मा के स्वरूप को जानकर उसी के चिन्तन में अपना समय व्यतीत करो; समस्त प्रारब्ध कर्मों के भोगों को भोगते हुए तुम्हें उद्विग्न नहीं होना चाहिए। आत्मज्ञान हो जाने पर भी प्रारब्ध स्वयं नहीं छोड़ता। परंतु जब तत्वज्ञान का उदय होता है, तब ज्ञानी की दृष्टि में प्रारब्ध कर्म का उसी प्रकार अभाव हो जाता है,जिस प्रकार स्वप्नलोक के देहादिक असत् होने के कारण जागने पर नहीं रह जाते। जन्मान्तर के किये हुए जो कर्म हैं, वे ही प्रारब्ध कहे गये हैं। परंतु ज्ञानी के लिए तो जन्मान्तर भी नहीं है। अतः उसके लिए कभी भी प्रारब्ध नहीं रहता। जिस प्रकार स्वप्नकालीन देह देह नहीं होती, अध्यासमात्र होती है, उसी प्रकार यह जाग्रत्-काल का शरीर भी अध्यासमात्र है। अध्यस्त पदार्थ की उत्पत्ति कहाँ होती है। और जिसकी उत्पत्ति नहीं हुई, उसकी स्थिति कहाँ! (जैसे रज्जु में सर्प का अध्यास होने पर रज्जु में सर्प नहीं पैदा होता और न वहाँ सर्प की स्थिति ही होती है।) इस प्रपंच का उपादान कारण आत्मा है, जिस प्रकार मिट्टी के पात्रों का उपादान कारण मिट्टी है। वेदान्त के अनुसार यह प्रपंच अज्ञान के कारण आत्मा में भासता है ; यदि अज्ञान नष्ट हो जाय तो विश्व की विश्वता कहाँ रहेगी। जिस प्रकार भ्रम से मनुष्य रज्जुबुद्धि का त्याग करके उसे सर्पबुद्धि से ग्रहण करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष सत्य (आत्मा) का ज्ञान न होने के कारण प्रपंच को देखता है।

जब सामने रस्सी के टुकड़े को अच्छी तरह पहचान लेने पर जैसे उसमें प्रतीत होने वाला सर्परूप नहीं रह जाता, उसी प्रकार अधिष्ठानस्वरूप आत्मा का ज्ञान होने पर जब प्रपंच भी शून्यता को प्राप्त हो जाता है, तब देह भी प्रपंच रूप ही होने के कारण उसके साथ ही शून्यता में परिणत हो जाता है। उस अवस्था में प्रारब्ध की स्थिति कैसे रह सकती है। अज्ञानीजनों को समझाने के लिए प्रारब्ध की बात कही जाती है। तदनन्तर कालवश की प्रारब्ध के नष्ट हो जाने पर प्रणव और ब्रह्म की एकता के चिन्तन से नादरूप में साक्षात् ज्योतिर्मय, शिवस्वरूप परमात्मा का आविर्भाव होता है–ठीक वैसे ही, जिस प्रकार मेघ के दूर हो जाने पर सूर्यनारायण प्रकाशित हो उठते हैं। योगी सिद्धासन से बैठकर वैष्णवी मुद्रा धारण करके दाहिने कान के भीतर उठते हुए नाद(अनाहत ध्वनि) को सदा सुनता रहे। इस प्रकार अभ्यास में लाया हुआ नाद बाह्य ध्वनियों का आवृत कर लेता है। इस प्रकार एक पक्ष अर्थात अकार को जीतकर दूसरे पक्ष उकार को जीते और क्रमशः सम्पूर्ण प्रणव पर विजय प्राप्त कर तुर्यपद अर्थात् आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त होता है।।।–।।।

●●●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 DECEMBER 2019

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्माद्पुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

□□□□□□

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्व प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।
(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

संरक्षक :- संगमेश्वर आनन्दजी सरस्वतीजी की महाराजा मुद्रण एवं प्रकाशन की, धर्मलाभ धर्मों के लिए राष्ट्रीय कलिंग एवं डिस्टेंट वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्माद्पुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPBIL/W/2004/14566.
सम्पादक : आनन्द म. (बी.) दयालाल वर्मा